जीवन का आधार

समाधि

– डॉ. संजीवकुमार गोधा

जीवन का आधार : समाधि

(समाधि विषय पर हुए सारगर्भित प्रवचनों का संकलन)

लेखक

डॉ. संजीवकुमार गोधा

एम.ए. द्वय, नेट, एम.फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.) 302015

E-mail : ptstjaipur67@gmail.com

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
26 नवम्बर, 2025
प्रभावना दिवस के अवसर पर

मूल्य : 30 रुपये

प्रकाशन सहयोगी

डॉ. संजीवकुमार गोधा श्रुत–प्रभावना ट्रस्ट
अ. सौ. सीमाबेन हितेशकुमार गांधी
श्रीमती एकता जैन, चेन्नई

श्रीमती अंकिता जैन, बैंगलोर
श्रीमती पंकजा दर्यापूरकर, कल्याण
डॉ. विमला जैन, नागपुर
श्री निमित्त जैन, मुम्बई

मुद्रक :
पॉपुलर प्रिंटर्स
जयपुर

प्रकाशकीय

जिनागम के चारों ही अनुयोगों के मर्मज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. संजीवकुमार गोधा अब हमारे बीच नहीं रहे। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की जैनसमाज उनके प्रवचनों को बड़े आदर से सुनती थी, इतनी अल्पवय में वे सम्पूर्ण जैनसमाज के हृदय के हार बन गये थे। आज उनकी रिक्तता की पूर्ति होना असम्भव-सा लग रहा है; परंतु उनके द्वारा लिखित कृतियों के माध्यम से उनकी कमी की कुछ भरपाई करने का प्रयास कर रहे हैं। आपकी प्रथम छह कृतियाँ **कालचक्र, समुद्घात, कर्मचक्र से सिद्धचक्र, जिनागम के आलोक में : तीन लोक, भेदविज्ञान एवं मोक्षमार्ग संजीवनी** के अनेक संस्करण विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

इसी क्रम में अब उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति '**समाधि जीवन का आधार**' आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

यह कृति समाधि विषय पर आधारित उनके प्रवचनों का व्यवस्थित संकलन है, जिसमें समाधि के स्वरूप को अत्यधिक सरल भाषा में प्रशस्त किया गया है, प्रत्येक मोक्षार्थी जीव के लिए कृति अत्यन्त लाभदायक है।

डॉ. संजीव गोधा ने 13 ग्रंथों का सम्पादन व अनेक शोध लेख लिखे हैं। इस कृति के अतिरिक्त भी कुछ अन्य पुस्तकों का प्रणयन भी आपके द्वारा किया गया है, जिनका प्रकाशन यथाशीघ्र किया जाएगा।

इस कृति के प्रकाशन का दायित्व सदा की भांति विभाग के प्रभारी डॉ. अखिल बंसल ने बखूबी सम्भाला है तथा इस कृति को परिष्कृत करने में पण्डित अनिल शास्त्री, खनियाँधाना व पण्डित अखिल शास्त्री, मण्डीदीप का सहयोग भी सराहनीय रहा है। अत: सभी का आभार।

समाधि की परिचायक इस कृति का अध्ययन कर सभी आत्मार्थी अपना आत्मकल्याण करें – यही भावना है।

17 नवम्बर, 2025

विपिन जैन 'शास्त्री', मुम्बई
प्रकाशन मंत्री

अन्तर्भावना

इस दुषम पंचम काल में जिनदेव का जब हो विरह।
तब मात सम उपकार करते शास्त्र ही आधार हैं।।

श्री संजीवकुमारजी गोधा सरल शैली में प्रवचन करने वाले जन-जन के प्रिय विद्वान हैं।

बाल्यकाल से ही उनकी धर्म में रुचि रही है। विवाह उपरांत भी वे घर-गृहस्थी के विकल्पों में अधिक नहीं उलझे और निरंतर तत्त्व- प्रचार ही करते रहे; जिसकी मैं साक्षी रही हूँ।

उनकी भावना जिनधर्म के प्रचार-प्रसार की ही रही है; जिस हेतु उन्होंने अनेक ग्रंथों पर प्रवचन तथा लेखन कार्य किया है। प्रवचनों के क्रम में आत्मार्थियों के सबसे प्रिय विषय समाधि पर उन्होंने बहुत ही मार्मिक प्रवचन किए हैं जो कि जन-जन के जीवन को समाधिमय बनाने वाले हैं, उनका स्वयं का जीवन भी समाधिमय रहा एवं मरण भी समाधिमय हुआ।

ये प्रवचन सभी को अवश्य सुनने चाहिए। प्रस्तुत कृति '**जीवन का आधार : समाधि :** ' उन्हीं प्रवचनों को आधार बनाकर आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है।

इस कृति का अध्ययन करते हुए हम सभी अपने मोक्षमार्ग को प्रशस्त करें - इसी पवित्र भावना के साथ आपके कर कमलों में यह कृति समर्पित है।

- संस्कृति गोधा

जीवन का आधार : समाधि

हम सभी चाहते हैं कि हमारा जीवन बदल जाए, हम धर्ममार्ग पर निरंतर बढ़ते रहें, हमारा धर्ममार्ग निरंतर वृद्धिंगत होवे। इस प्रकरण की प्रत्येक पंक्ति हमें जीवन-निर्माण की ओर बढ़ाती है। जीवन तो सभी जीते हैं, पर लोक में एक कहावत प्रचलित है -

अंत भला सो सब भला।

इसलिए आज हम अंत की चर्चा करने वाले हैं, समापन समारोह की चर्चा करने वाले हैं। बहुत काल व्यतीत हो गया, न जाने कब इस जीवन का अंत आ जाए, यह जीवन कब ढल जाए, कब पूरा हो जाए, कोई भरोसा नहीं, इसीलिए अंत समय आने के पहले हमें अपने जीवन का उद्धार कर लेना चाहिए, हमें आत्मकल्याण कर लेना चाहिए।

'विदाई की बेला' कृति में कहा गया है -

अंत समय में की जाने वाली तैयारी।

सम्यक् दर्शन हो गया, पाँचवाँ गुणस्थान हो गया, अणुव्रत ले लिए, इन अणुव्रतों के माध्यम से आगे बढ़ने के लिए तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी ले लिए, प्रतिमाधारी, संयमी और व्रती हो गए और इन सबका दृढ़ता से पालन करते-करते प्रत्येक श्रावक यह भावना भाता है कि अंत समय में सल्लेखना होनी चाहिए।

ये सल्लेखना क्या है? इसका स्वरूप क्या है? वह कैसे धारण की जाती है? सल्लेखना अंगीकार करने की विधि क्या है?

ये सल्लेखना का प्रकरण 70 वर्ष से ऊपर की उम्र वालों के लिए तो है ही; लेकिन यह सल्लेखना का प्रकरण आज के समय में सबके लिए उपयोगी नजर आता है; क्योंकि आज व्यक्ति घर से सुरक्षित

निकलता है लेकिन पता नहीं कि कब दुर्घटना का शिकार हो जाए और फिर लौटकर घर आए ही नहीं, सिर्फ उसकी खबर आए।

ऐसी स्थिति में क्या सल्लेखना हमारे लिए उपयोगी नहीं है और अभी हमने कोरोना महामारी को लेकर जो मौत का तांडव देखा है, वैसी स्थिति कभी भी किसी के साथ बन सकती है।

विपत्ति पूछ कर नहीं आती है, संकट और तकलीफ पूछ कर नहीं आते हैं, हमारे ऊपर जो तकलीफ आई है हो सकता है वह मौत के साथ ही जाने वाली हो, इसलिए चाहे बालक हो अथवा वृद्ध हो सभी के लिए यह प्रकरण उपयोगी है। हमें एक बार सल्लेखना का स्वरूप गहराई से समझना चाहिए। जिसका अंत सुधर गया, समझ लीजिए उसका सबकुछ सुधर गया।

इसलिए सम्यक्त्व सहित पाँच अणुव्रतों को धारण करके और सात शीलव्रतों का पालन करके अंत में सल्लेखना अंगीकार करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अंत में सल्लेखना अंगीकार करनी ही चाहिए। व्रत और शीलों के बाद में श्रावकाचार ग्रंथों में सल्लेखना का प्रकरण आता है, यहाँ सल्लेखना की भावना भा रहे हैं।

अंत समय में ली गई सल्लेखना जीवनभर किए गए धर्म-कर्म को हमारे साथ ले जाने में समर्थ है। लोग घबराते हैं, चिंतित होते हैं और बोलते हैं, यदि पण्डितजी सम्यग्दर्शन नहीं होगा तब क्या होगा? जीवन पूरा हो जाएगा तब क्या होगा? हमारा तो जीवन जा रहा है, हम क्या करें? आकुलित-व्याकुलित हो जाते हैं।

अरे भाई! चिंता मत करो, सल्लेखना अंगीकार करो, समाधि-मरण की भावना भाओ, वैराग्यपूर्वक अंतिम समय में '**देहांत के समय में तुमको ना भूल जाऊँ**' - इस प्रकार की भावना भाओ।

इससे जीवनभर की जमा पूँजी आपकी यहाँ छूट कर बर्बाद होने वाली नहीं है, पूरी जमा पूँजी आपके साथ में अगले भव में चली

जाएगी, जितना कमाया है उसे ले जाने की यदि कोई विधि है तो उसे सल्लेखना नाम से पुकारा गया है, इसलिए सबसे पहले सल्लेखना की भावना की बात कर रहे हैं कि सर्वप्रथम भावना तो भाओ।

आपको यह भावना भानी चाहिए कि मेरी जो धरोहर है, वह अगले भव में मेरे साथ में जाए। धन को सीने से चिपका कर मत रखना, तिजोरियों की चाबी को अपनी छाती से चिपका कर मत रखना, लॉकर की चाबी न तो आज तक किसी के साथ गई है और न कभी साथ जा सकती है। असली पूँजी धर्मरूपी धन, रत्नत्रय भेदविज्ञान है और धर्म में बिताया गया काल है। उस पूँजी को ले जाने के लिए साधन सल्लेखना है, यह सल्लेखना ही है जो मेरे धर्मरूपी धन को मेरे साथ ले जाने में समर्थ है। कभी ऐसा विचार आया भी नहीं होगा, हमेशा यही सोचा होगा कि कुछ भी साथ नहीं जाएगा, सब यहीं रखा रह जाएगा।

इस धरा का इस धरा पर ही धरा रह जाएगा।
मुट्ठी बंद कर आया था हाथ पसारे जायेगा।।

सारे जगत में ऐसा ही कहने वाले मिलेंगे, हमारे आचार्य हमें यह आशीर्वाद दे रहे हैं – तुम चिंता मत करो, न ही तुम्हें डरने की जरूरत है।

तेरा सो जावे नहीं और जावे सो तेरा नहीं।

जो तेरा होगा वह यहाँ नहीं छूटेगा और जो छूटेगा उसकी चिंता करने की तुम्हें जरूरत नहीं है; क्योंकि वह वास्तव में तेरा है ही नहीं, धर्म ही तेरा सच्चा साथी है, वही तुम्हारे साथ में जाने वाला है इसलिए उसकी चिंता करनी है दुनिया में कोई साथ देने वाला नहीं है, न पत्नी काम आएगी, न बेटा काम आएगा। कोई भी काम आने वाला नहीं है, केवल तुम्हारा परिणाम, तुम्हारे भाव ही तुम्हारे साथ जाएँगे। तेरा भेदविज्ञान तेरे साथ जाएगा इसलिए इस कला को अपने साथ रखो।

यह सल्लेखना का धागा हमारी कमायी को कभी खाने नहीं देगा। देखो! श्रीमद् राजचन्दजी भी कहते हैं –

ज्ञान की सुई में यदि धागा पिरो दोगे तो काम आएगा।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव भी तो अष्टपाहुड में लिखते हैं –

डोरा सहित सुई नहीं खोती, गिरे चाहे वन भवन।
संसार–सागर पार हों, जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण।।

उसमें भेदविज्ञान का डोरा पिरो दो, यह धर्म निश्चिन्त करता है, सचेत करता है, सावधान रखता है, निराकुल बनाता है, यह धर्म आनंद से रहना सिखाता है। यह सल्लेखना की चर्चा आनन्द की जिंदगी जीने के लिए है। हमें मरण की नहीं जीवन की चर्चा करनी चाहिए।

इसी बात को डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल इसप्रकार कहते हैं –

मरण तो एक समय का हो, मरण का कैसे हो उद्धार।

लोग कहते हैं कि पण्डितजी! मरण सुधारना है, मरण ना बिगड़ जाए। अरे भाई! मरण कैसे बिगड़ेगा? मरण किसका नाम है? तब आपको उत्तर मिलेगा कि मरण तो एक समय का नाम है। जब शरीर से आत्मा निकलकर झटके से चला जाए, उसका नाम मरण है। मरण तो एक समय की पर्याय है, एक समय की पर्याय को कैसे पकड़ोगे, तो फिर हम मरण कैसे सुधारें?

मरण सुधारने के लिए क्या किया जाए? हमारे क्षयोपशम ज्ञान में कोई बात असंख्यात समय बाद ख्याल में आती है, इसलिए हमें मरण पकड़ में भी तो नहीं आता। जब मरण पकड़ में ही नहीं आता फिर मरण सुधरेगा कैसे? तो लोग कहते हैं कि मरण के पहले का समय सुधार लो तो मरण सुधर जाएगा। मरण के पहले का समय तो जीवन है, जब तक मरा नहीं है तब तक जीवन है।

अभी तो सल्लेखना की भावना बन रही है, अभी तो हम सल्लेखना

लेने की बात कर रहे हैं कि सल्लेखना लेनी चाहिए, वह लेने योग्य है, सबसे पहले सल्लेखना लेने का भरोसा हमारे अंदर आना चाहिए। हमारा मरण सल्लेखनापूर्वक, समाधिपूर्वक होगा। समाधिपूर्वक मरण के लिए मरण की चिंता मत करो, जीवन सुधारने का विकल्प करो। जीवन सुधारना है; क्योंकि मौत जब आएगी तब हमें सुधारने का मौका भी नहीं देगी। अचानक मौत आ गई तब हमें संभलने का मौका ही नहीं मिलेगा। हम रोड क्रॉस कर रहे हैं और अचानक सामने से आती हुई गाड़ी ने एक टक्कर में हमें उड़ा दिया, अब हमें कहाँ मरण सुधारने का मौका मिलेगा? अब तो निपट गई संध्या, पूरा हो गया काम, अब कुछ नहीं हो सकता, जो होना था सो हो गया। थोड़ा-सा सीना दर्द कर रहा था, डॉक्टर को जाकर दिखाया तो डॉक्टर ने जाँच की और बताया कि लास्ट स्टेज का कैंसर है, सीधा न बताकर परिवारवालों को बताया और कहा कि उनके पास मुश्किल से दो-चार दिन हैं, उनकी जिंदगी के दो-चार दिन ही बचे हैं, ये तीन दिन ही निकाल लें तो मुश्किल ही समझना।

अब बोलिए क्या सुधारना है? जीवन तो पूरा हो गया, अब क्या सुधरेगा? सुधार तो उसके पहले करना है, उसकी तैयारी तो पहले करनी है, जहाँ गुंजाइश हो सुधार वहाँ करना है, यहाँ पुरुषार्थसिद्धउपाय में सल्लेखना की प्रेरणा देते हुए उसकी महिमा गा रहे हैं।

मरण के अंत में होने वाली सल्लेखना ही एकमात्र सल्लेखना ऐसी है जो मेरे धर्मरूपी धन को मेरे साथ ले जाने में समर्थ है, यदि बच्चे मेरी कुछ रचनाओं, किताबों को मेरी अर्थी के साथ पोटली में बाँध देंगे तो वह साथ में चली जाएँगी ना? दो-चार पूजन और बारह भावनायें लिखी थीं? क्या वह साथ में चली जाएँगी? यह साथ में जाने वाली नहीं हैं, जो आपका ज्ञान था, जो अंदर में वैराग्य था, जो साधनामय जीवन जिया था, जिन शांत परिणामों के साथ देह का त्याग किया था, परिणाम जरूर साथ जाएँगे। वह सरलता, वह सहजता जरूर

आपके साथ जाएगी। धर्मरूपी धन ही सच्चा धन है, यह असली धन है, बाहर का धन तो नकली धन कहलाता है; क्योंकि वह छूट जाता है, बाहर का धन साथ जाने वाला नहीं है, उस धन की हम क्या बात करें जो हमारे जीते-जी हमें छोड़कर चला जाए, बाहर के धन की तो तीन दशाएँ होती हैं - दान, भोग और नाश।

जब पाप का उदय आता है, तब धन तिजोरी तोड़कर चला जाता है और पुण्य का उदय आता है तो छप्पर फाड़कर आ जाता है। पुण्य के उदय में धन पता नहीं कहाँ से आ जाता है, जमीन खोदकर आ जाता है। यदि पाप का उदय होगा, तो जोड़-जोड़ के कितना भी इक्ट्ठा करने का प्रयास करो सब निकल जाएगा। आगे चलकर जब सल्लेखना का स्वरूप बताएँगे तब तो बात ही कुछ और होगी, अभी तो भावना भा रहे हैं, तुम्हारा सच्चा साथी तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बचपन से उठने-बैठने वाले दोस्त नहीं हैं।

मित्र अरि हो जाए जगत में अशुभ उदय के आने से।

पाप के उदय में तो धर्म ही मित्र है और पुण्य के उदय में भी धर्म ही काम आने वाला है। पाप कर्म के उदय में सब छोड़कर चले जाते हैं, अपने भी पराए हो जाते हैं, उदय तो अपना बदल गया है, व्यक्ति तो नहीं बदले, वे तो वही मित्र हैं, वस्तु तो वही है, बदलाव अपने उदय में हुआ है। उदय के बदलने पर मित्र तो बदल सकता है, पर धर्म नहीं बदल सकता, यह सच्चा धर्म ही हमारा है। उदय के बदलने पर मित्र, संयोग, परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, हँसकर के बोलने वाले फटकारने लगते हैं, प्यार से बोलने वाले हाथ दिखाने लगते हैं, उदय बदलने पर उन्हें सच्चा साथी नहीं कह सकते; परन्तु धर्म तो वह है जो सच्चा साथी है। कितनी भी प्रतिकूलताएँ क्यों न आ जाएँ, पर धर्म साथ नहीं छोड़ता और यदि साथ छोड़ दे तब धर्म कैसा?

आपके शांत परिणाम आपके साथ आएँगे, जब बीमारियाँ और तकलीफें आपको घेर लेंगी, चारों तरफ कोई साथ देने वाला नजर नहीं आएगा तब आपके चित्त में चलता हुआ आपका चिंतन ही आपके काम आएगा। वही आपको हिम्मत एवं शक्ति प्रदान करेगा। जब आप बिस्तर पर पड़े होंगे, डॉक्टर और परिवारवाले अपना कार्य कर रहे होंगे, दवाइयाँ अपना काम कर रही होंगी, जो भी होना होगा वैसा ही हो रहा होगा। प्राकृतिक या आयुर्वेदिक, चाहे कोई भी चिकित्सा हो रही होगी, शरीर अपना काम करेगा, ऐसी स्थिति में हमारा धर्मरूपी धन अपना कार्य करेगा।

लौकिक धन में इतनी शक्ति नहीं है कि किसी का भला कर सके और धर्मरूपी धन जिसके पास में है तो कोई भी उसका अहित नहीं कर सकता। यह धर्मरूपी धन सुरक्षा कवच है, यह धर्म अभयदान है, यह हमें निर्भय और निडर बनाता है, यह हमें अमर बना देता है। यह समस्त आकुलताओं को सदा-सदा के लिए ध्वस्त कर देता है, सबकुछ छोड़कर चले जाएँगे तब भी यह धर्मरूपी धन हमारा साथ देगा।

आप इतना मुस्कुराते कैसे हैं? इतना प्रसन्न कैसे हैं? क्या कोई संकट या आफत नहीं आती? कभी कोई चिंता या घबराहट नहीं होती? आपकी ऐसी कितनी संपत्ति है कि आपको भविष्य की चिंता नहीं है? भाई! मेरे पास में ज्ञानधन है, आराधना का धन है, मेरे पास चैतन्यधन है, मुझे किस बात की चिंता होगी? मेरा धन मुझसे कोई नहीं छीन सकता। बाजार गिरने के समय भी हमारा बाजार कभी नहीं गिरता, कैसी भी परिस्थिति हो, कोरोना आ जाए, इस धर्म की माँग कभी कम नहीं होती, सभी उत्साहपूर्वक सुनते हैं।

हम तो सत्य बात बताना चाहते हैं, जिस चीज से हमें फायदा होता है उसे हम छोड़ना नहीं चाहते हैं, इसलिए सबसे पहले यह निश्चित करो कि धर्म से हमें फायदा हो रहा है या नहीं। धर्म पढ़ने से परिणाम

निर्मल हो रहे हैं या नहीं। धर्म पढ़ने से निराकुलता, शांति आती है या नहीं। चिंता कम होती है या नहीं। जिस चीज से आपको फायदा है, आपका भला है, हित है, उस चीज को भला कौन छोड़ना चाहेगा?

जिस चीज से लगाव हो, जो आपके बहुत काम आती हो, जैसे गाड़ी आपके बहुत काम आती है, किचन में मिक्सी आपके बहुत काम आती है, और अचानक से यदि वह चली जाए तो आपको कैसा लगता है? हमें सूनापन लगता है, इसलिए हम उसे छोड़ना नहीं चाहते। जैसे अभी आपके लिए मोबाइल प्रिय वस्तु है, वॉशरूम में जाते हैं तब भी उसे साथ लेकर जाते हैं। ट्रेन में जाएँ या फ्लाइट में सफर कर रहे हों, घर में रहें या ऑफिस में काम कर रहे हों, दुनिया में किसी भी जगह जा रहे हों सबसे प्रिय हमें मोबाइल लगता है। यह न छूट जाए, कहीं 2 मिनट के लिए भी चला जाए तो आकुलित होकर कहता है कि कहाँ गया, कहाँ गया?

आपसे पूछते हैं कि क्या आप अपनी इतनी प्रिय चीज को छोड़ना चाहते हैं, तब आप कहते हैं, नहीं। आपका वश चले तो अगले भव में भी साथ लेकर जाएँ, क्योंकि आप उसको छोड़ना नहीं चाहते हैं।

अब यहाँ आपको धर्म के लाभ बता रहे हैं यदि धर्म के लाभ विचार में आएँगे तब आपको धर्म का साथ चाहिए होगा; क्योंकि आप लोग ऐसा कहते हुए मिलते हैं कि **'पण्डितजी! मेरा धर्म नहीं छूट जाए, अपना तो बस धर्म चलता रहे।'** अरे भाई! उस चलते हुए धर्म को यहीं छोड़कर नहीं जाना है, वह अगले भव में भी साथ चला जाए तो महाभाग्य होगा।

हमारे पास एक सल्लेखना नाम की स्कीम है, उस स्कीम से क्या होगा? उस स्कीम से आपके द्वारा किए गए सारे धर्म के कार्य अगले भव में पहुँचा दिए जाएँगे। क्या आप उस स्कीम में इन्वेस्ट करने के लिए तैयार हैं? पैसा इन्वेस्ट नहीं करना है, थोड़ा-सा समय इन्वेस्ट करना है, तो

क्या आप थोड़ा-सा समय इन्वेस्ट करने के लिए तैयार हैं? अरे! हम तो फ्री हैं, हम तो रिटायर्ड हैं, हमारे पास क्या काम है, हम तो जरूर तैयार हैं। तो बताइए कितना समय लगाना है? हम आपसे जो समय माँग रहे हैं, उसे आप धर्म में लगाइए, यह समय का इन्वेस्टमेंट है, आपका समय स्वाध्याय करने में, अभ्यास करने में, चिंतन-मनन करने में लगे।

उससे क्या होगा? इस इन्वेस्टमेंट का पूरा लाभ आपको ही मिलेगा। LIC वालों की टैगलाइन है -

जीवन के साथ भी जीवन के बाद भी।

पर यह जिंदगी के बाद वाला लाभ किसे मिलेगा? जिंदगी के साथ का तो मुझे मिल जाएगा, पर बाद वाला तो बाल-बच्चों को मिलेगा।

आप तो मुझे वह बतलाओ जो मेरी जिंदगी के साथ में मेरे साथ हो और मेरी जिंदगी के बाद भी मेरे साथ हो, वह ही वास्तव में मेरा धन है, उस धन का नाम धर्मधन है, उसे ले जाने की विधि क्या है? उस विधि का नाम सल्लेखना है। यह धर्म पसंद आएगा, यहाँ अणुव्रतियों की, पंचम गुणस्थान वालों की चर्चा कर रहे हैं, जो व्यक्ति व्रत अंगीकार करता है, जिसे अपना आत्मा सुहाता है, जिसे ज्ञायक की धुन सवार हो गई है, जिसे अपने आत्मा की लगन लग गई है, उसे धर्म को साथ में ले जाने की जरूर भावना होती है। उसे यहाँ किसके भरोसे छोड़ें, साथ में लेकर जाना है, यहाँ साथ में ले जाने की बात कर रहे हैं।

मरण के अंत में होने वाली यह एक सल्लेखना ही मेरे धर्मरूपी धन को मेरे साथ ले जाने में समर्थ है - इसप्रकार भक्ति सहित निरंतर ऐसी भावना करनी चाहिए।

सल्लेखना की भावना अब हो सफल मेरी।
आराधना में हर घड़ी बीते प्रभु मेरी।।

सल्लेखना की भक्ति सहित निरंतर भावना भाओ! जगत में ऐसा कहा गया है - **भावना भवनाशिनी।**

भावना से भव का नाश होता है, सच्चे हृदय से जो भावना भाता है, उसकी वह भावना सफल हुए बिना नहीं रहती।

'जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु को पूरी शिद्दत से चाहता है तब पूरी कायनात उसे मिलाने के लिए जुट जाती है' – ऐसा कहते हैं।

आप एक बार भावना तो भाओ, यही आचार्य अमृतचंद्रदेव कहते हैं कि छह महीने जगत से उदास होकर तू अपने ज्ञायक को अनुभव करने की भावना तो भा। छह महीने में अवश्य प्राप्ति होगी, कैसे प्राप्ति नहीं होगी? बनारसीदासजी ने भी ऐसा कहा है – प्राप्ति होगी ही होगी, तुम्हें आत्मा की प्राप्ति अवश्य होगी, बस लगन सच्ची होनी चाहिए।

बस एक लगन भर हो सच्ची
तुझको निश्चित दर्शन होगा।
जब एक रतन अनमोल है तो
फिर रत्नाकर कैसा होगा।।
जिसकी चर्चा ही है सुंदर
वह कितना सुंदर होगा।

लगाले प्रभु से लगन, नाच मेरे मयूर मन हो करके मग्न।

अरे! प्रभु से लगन नहीं, अब तो अपने आप से लगन लगाओ, सल्लेखना की भावना अपने से लगन लगाने की भावना है, बाहर से दृष्टि हटा करके अंदर में झुकाने की भावना है, भीतर में देखने की भावना है, बाहर से हटो और भीतर में आ जाओ। सभी जगह से दृष्टि हटाओ और भीतर में आ जाओ। सामायिक का प्रकरण तो जीवनभर चलने वाला है; लेकिन यह सल्लेखना में जीवन के अंत को लक्ष्य में रखकर के समता को धारण किया जाता है।

कदम बढ़ते जा रहे हैं, भूधरदासजी की पंक्तियाँ हैं –

परभव नजदीक आत नरभव निष्फल है।

मृत्यु निरंतर नजदीक आती जा रही है, परभव नजदीक आ रहा है और नरभव निष्फल होता जा रहा है।

ज्यों ही दिन घटे त्यों ही आयु में अवशि घटे।
बूँद–बूँद बीते जैसे अंजुलि को जल है।।
देह नित क्षीण होत नैन तेज हीन होत।
यौवन मलीन होत क्षीण होत बल है।।
आवे जरा नेरी तकै अंतक अहेरी आवे।
परभव नजदीक आत नरभव निष्फल है।।
मिलके मिलापि जन पूछत कुशल मेरी।
ऐसी दशा माहिं मित्र काहे की कुशल है।।

देह की परिस्थितियों का चित्रण करके अंत समय की भावना भा रहे हैं। भूधरदासजी से किसी ने प्रश्न कर लिया कि पण्डितजी बताइए कि सब कुशल मंगल तो है। चार दोस्त, सगे–संबंधी मिलते होंगे, तो मिलते ही पूछते होंगे और भाई सब ठीक–ठाक और सब मजे में, कुशल मंगल। तब प्रश्न के उत्तर में आठ पंक्तियाँ कहते हैं।

जैन शतक में 37वें नंबर का पद है –

ज्यों ही दिन घटे त्यों ही आयु में अवशि घटे।

एक दिन कट गया आयु की अवधि और कम हो गई, एक–एक दिन में आयु घटती जाती है।

बूँद–बूँद बीते जैसे अंजुलि को जल है।

अंजुलि में भरा पानी बूँद–बूँद करके बीतता चला जा रहा है, जिंदगी बीत रही है और मौत नजदीक आ रही है।

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल बारह भावना में लिखते हैं –

अंजुली–जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही।।

काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मँडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय-तृष्णा तरुण होती जा रही।।

ये काल की काली घटाएँ चारों ओर मँडरा रही हैं, क्या पता कब बिजली गिर जाए? क्या पता कब घर गिर जाए? क्या पता कब मौत आ जाए?

देह नित क्षीण होत नैन तेज हीन होत।

आँखों की रोशनी निरंतर कम होती चली जा रही है, पहले चश्मा नहीं था, फिर चश्मा लग गया, फिर चश्मे का नंबर बढ़ गया, फिर नंबर और बढ़ गया और मोटा चश्मा लग गया। धीरे-धीरे आँखों से दिखना कम-कम और कम होता चला जा रहा है।

यौवन मलीन होत क्षीण होत बल है।

यौवन खत्म होता जा रहा है, बुढ़ापा नजदीक आता जा रहा है, बल जाता जा रहा है, जवानी में ही बुढ़ापा-सा दिखने लगता है, उठते-बैठते हाथ-पैर दुःखने लगे हैं, घुटने दुःखने लगे हैं, तकलीफ दिखाई दे रही है।

आवे जरा नेरी तकै अंतक अहेरी आवे।

बुढ़ापा प्रतिदिन नजदीक आ रहा है, वृद्ध अवस्था नजदीक आ रही है, मृत्युरूपी आतंक शिकारी मानो ताक मार कर देख रहा है, झपट्टा मारने के लिए मानो तैयार बैठा हुआ है, न जाने कौन-सा क्षण ऐसा आ जाएगा और कालरूपी लुटेरा झटके से लूटकर ले जाएगा, शरीर की क्या स्थिति है। आँख-कान कमजोर होते चले जा रहे हैं, दाँत हिलते चले जा रहे हैं, घुटने जवाब दे रहे हैं, उठने-बैठने में भगवान का नाम याद आ रहा है।

पण्डित कैलाशचन्दजी बुलंदशहर वाले अपने प्रवचनों में कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार सुनाया करते थे -

आँख पर पड़ेगा जाला।
कान पर पड़ेगा ताला।
नाक से बहेगा नाला।
लाठी से पड़ेगा पाला।
पाँचों ही इंद्रियों का निकलेगा दीवाला।
ऐसी अवस्था में क्या करेगा लाला।
परभव नजदीक आत नरभव निष्फल है।

जब-जब परेशानी हो तब-तब सत्य धर्म को '**वत्थु सहावो धम्मो**' को अपनाकर देखिए - यह सच्चा धर्म है। '**दंसणमूलो धम्मो**' - यह सच्चा धर्म है, रत्नत्रय धर्म है, '**चारित्तं खलु धम्मो**' - यह सच्चा धर्म है, दसलक्षण धर्म है, अहिंसा परम धर्म है, जितने भी प्रकार के धर्म कहे गए हैं आप उनमें से किसी को भी पकड़कर देख लीजिए।

वीतरागता और अनेकान्तता धर्म हैं। जब तक धर्म आपके साथ है तब तक ऐसा सुरक्षा कवच आपके साथ है कि आपके ऊपर संकट नहीं आ सकता है, परेशानियाँ नहीं आ सकती हैं, मेरी भावना की पंक्ति है -

वस्तुस्वरूप विचार खुशी से सब दु:ख संकट सहा करें।

वस्तु का स्वरूप ही धर्म है, वस्तुस्वरूप का खुशी से विचार कीजिए, तब सब दु:ख, संकट, कष्ट, परेशानियाँ वस्तु स्वरूप के विचार मात्र से धूमिल हो जाएँगी। यह वस्तु स्वरूप का विचार ऐसी चमत्कारिक चीज है। संकट और बीमारी के समय आप अपने इस धर्मरूपी मित्र को आजमाकर देखिए, आपका दु:ख कम होता है या नहीं? जब परिवार में किसी का वियोग हो जाए तो धर्म का साथ रखकर देखिए, तकलीफ कम होती है या नहीं?

मिलके मिलापि जन पूछत कुशल मेरी।

सब लोग पूछते हैं कि पण्डितजी ठीक तो हो, तबीयत ठीक तो है,

घर में कोई संकट तो नहीं है, किसी प्रकार की कोई तकलीफ तो नहीं है, अरे! उन्हें क्या बताएँ, एक के बाद एक तकलीफ लगी ही हुई हैं।

ऐसी दशा माँहि मित्र काहे कि कुशल है।

कैसी कुशल-क्षेम बताएँ, क्या भला कहें आपको, सब निकलता चला जा रहा है, लेकिन डरने की जरूरत नहीं है; क्योंकि हम जिंदगी को काट नहीं रहे हैं, हम जिंदगी के हर पल को आराधना और तत्त्वज्ञान के माध्यम से जी रहे हैं। हर पल जिंदादिली से जियो, मस्त रहकर शांति से जियो, आराधनापूर्वक जियो, तत्त्वज्ञान के साथ में जियो, धर्म के साथ में जियो, धर्म को अपना साथी, अपना मित्र बनाओ, इस सल्लेखना के माध्यम से यह धर्मरूपी धन अगले भव में अपने साथ जाएगा।

आचार्य अमृतचन्द्रदेव हमें निरंतर मित्र से परिचय करा रहे हैं? आपका सच्चा साथी या मित्र कौन है, किसके भरोसे आप अंत तक सुरक्षित रह सकते हैं, किसका साथ आपको अंत समय तक रखना है, कौन ऐसा है? जो अपने साथ अगले भव तक जाएगा। जन्म-जन्म तक साथ निभाने की भावना भाने वाले जन्म-जन्म तक साथ नहीं देते, वे लोग इस जन्म में ही छोड़ कर चले जाते हैं, साथ-साथ जियेंगे साथ-साथ मरेंगे, ऐसे सात-सात जन्मों की कसमें खाने वाले लोग भी साथ नहीं रह पाते। जोड़े का एक पहले चला जाता है, एक रह जाता है, कभी पत्नी चली जाती है तो कभी पति चला जाता है, कोई ना कोई तो जाएगा। दो में से एक को तो जाना ही होगा।

एक धर्म नाम का साथी ऐसा है जो साथ नहीं छोड़ेगा। यदि आपने उसका साथ नहीं छोड़ा तो वह भी आपका साथ नहीं छोड़ेगा, आपने साथ छोड़ दिया तो वह भी साथ छोड़कर चला जाएगा, यह आप महसूस करेंगे कि बात तो सच्ची है, यह मित्र तो सच्चा है। जैसे मित्रों के साथ खड़े रहने मात्र से शांति मिलती है, वैसे ही इस धर्म को मित्र कहकर पुकारा गया है।

नीति का श्लोक है –

अलसस्य कुतो विद्या, अविद्यस्य कुतो धनम्।
अधनस्य कुतो मित्रम्, अमित्रस्य कुतो सुखम्।।

जिसके पास में विद्या नहीं है, उसके पास में धन नहीं होता और जिसके पास में धन नहीं होता, उसके पास में मित्र नहीं होता और जिसके कोई मित्र नहीं होता, वह व्यक्ति सुखी नहीं होता। मित्रता क्या है? सुख-दुःख में साथ देने का नाम मित्रता है। साथ नहीं छोड़ने का नाम मित्रता है।

जहाँ मित्रता, अपनापन, लगाव होता है, वहाँ साथ छोड़ा नहीं जाता। परिभाषा को उल्टा करके देखें, हमेशा साथ देने वाले का नाम मित्रता है, जो सदा काल साथ निभाए, उसे मित्र कहते हैं। जो तकलीफ और संकट के काल में आपका साथ निभाए, उसे मित्र कहते हैं और धर्म ही हमारा साथ निभाता है, इसलिए धर्म को ही हमारा सच्चा मित्र कहते हैं। यदि यह सच्चा मित्र है तब आप कभी नहीं चाहेंगे कि यह यहीं रह जाए, आप इसे अपने साथ ले जाना चाहेंगे, इसे अगले भव में साथ ले जाने के लिए सल्लेखना की भावना भाओ।

इयमैकैव समर्था धर्मस्वं मे मया समं नेतुम्।
सततमिति भावनीया पश्चिम सल्लेखना भक्त्या।।

अर्थ – यह एक मरण के अन्त में होने वाली सल्लेखना ही मेरे धर्मरूपी धन को मेरे साथ ले जाने में समर्थ है। इसप्रकार भक्ति सहित निरन्तर सल्लेखना की भावना करनी चाहिए।

इस सल्लेखना की भावना भाओ जो आपको सुखी करने में समर्थ है, आपके धर्मरूपी धन को परभव में ले जाने वाली है।

यह एकमात्र सल्लेखना ही मेरे धर्म को मेरे साथ ले जाने में समर्थ है, इसलिए हर एक मनुष्य को इस अंतिम सल्लेखना अथवा

समाधिमरण की भावना करनी चाहिए, जो अपने आपको मनुष्य समझता हो उसको कह रहे हैं, प्रत्येक जन को नहीं कहा।

संसार का कारण मिथ्यात्व और क्रोध आदि कषाय हैं। मिथ्यात्व और कषाय तो संसार में रहने का किराया हैं, जिसने मिथ्यात्व और कषायरूपी किराया देना बंद कर दिया, उसे संसाररूपी भवन में रहने का कोई अधिकार नहीं है, उसे यहाँ से निकाल दिया जाएगा। जिसने किराया नहीं दिया, उसे निकालो, यहाँ से फिर जहाँ जाना हो वहाँ जाओ, पर यहाँ नहीं रह सकते।

जिनका मिथ्यात्व चला गया हो, वह भी तो संसार में रहते हैं? हाँ! थोड़े से बोनस पीरियड में रहते हैं, एक महीना किराया नहीं दिया तो मकान मालिक तुरंत नहीं निकाल देते, दो-चार दिन और रुक जाते हैं कि चलो बाद में दे देगा, लेट दे देगा, थोड़ा और इंतजार कर लो, 2 महीने हो गए, भैया तुम्हारा किराया नहीं आया, कोई बात नहीं 10-5 दिन और रख लो और दो-चार महीने और नहीं दिया तब तो कहानी खत्म है। अब तो धक्के मारकर निकाल दिए जाओगे, ऐसे ही किसी ने मिथ्यात्व का किराया देना बंद कर दिया तब मोक्ष हो जाना चाहिए; लेकिन अभी भी थोड़े समय संसार में है, अभी भी रुल रहा है, जन्म-मरण हो रहा है, अभी भी इस जीव को तीन-चार भव तक झेल रहे हैं, सम्यक्त्व तो साथ में है, दो-चार भव निकलेंगे, उसके बाद यहाँ से निकल जाएगा।

किराया देना वही व्यक्ति बंद करता है, जिसे वह घर खाली करना होता है, जिसे वहाँ रहना नहीं होता है, जिसका नया घर बन जाता है, जिसे नया घर मिल जाता है। ज्ञानी जीव को यहाँ से सिद्धशिला, निज घर दिख गया, उन्हें संसार की प्रतिदिन की तू-तू मैं-मैं नहीं सुहाती।

संसार लगने लगा अब असार।

अब संसार असार लगने लगा अर्थात् अब संसार सुहाता नहीं है,

एक दिन मिथ्यात्व नहीं हुआ तो कषाय थोड़ी-बहुत आकुलता पैदा कर रही थी, यह कषाय की आकुलता बर्दाश्त नहीं होती है तो कहते हैं कि निकल जाओ यहाँ से। तब ज्ञानी कहते हैं कि थोड़े ही समय के लिए हैं, हमने अपना घर देख लिया है, मैं अब अपने निज घर में समाने वाला हूँ, अब ऐसा घर बनाया है कि जिसे बार-बार बदलने की जरूरत नहीं पड़ेगी। समाधि की भावना भाने वाले व्यक्ति ने अपना निज घर जान लिया है, पहचान लिया है। अब तो अपने घर में रहूँगा और अपने घर में आ जाने के बाद कोई रोक-टोक नहीं, अब कोई झंझट नहीं, किसी से तू-तू, मैं-मैं नहीं, कोई आदेश देने वाला नहीं, किसी को किराया देने की जरूरत नहीं।

अब यहाँ से बाहर निकलने की जरूरत नहीं, अपने घर जैसा सुकून और शांति कहीं नहीं मिलती है, अब सदा-सदा के लिए मिथ्यात्व को बंद कर दिया है, अब दृष्टिमोक्ष हो गया है, गुणस्थान चौथा-पाँचवाँ हो गया है, पंचम गुणस्थानवर्ती की सल्लेखना की चर्चा यहाँ चल रही है। अब आपके कुछ ही दिन शेष हैं, एक-एक दिन एक-एक भव के बराबर लगता है, इसके पश्चात् अनंत काल के लिए अपने घर में जाकर विराजमान होंगे, निजगुणसंपदा मिल जाएगी।

संसार के मूल कारण मिथ्यात्व तथा क्रोध आदि कषाय हैं, इन्हीं के कारण से आहार आदि परिग्रह में इच्छा है।

1. मिथ्यात्व और कषाय

2. मिथ्यात्व और कषाय के सहचारी कारण आहार और परिग्रह।

जितना-जितना आहार और परिग्रह हमें दिखाई दे रहा है, उससे परिग्रह के प्रति मूर्च्छा होती है, उससे कषाय, राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं और यह राग-द्वेष और विकार जब विशिष्टता में होता है, तब उसे मिथ्यात्व कहते हैं, अंतरंग का नाम मिथ्यात्व और कषाय है, बहिरंग का नाम आहार और परिग्रह है।

स्वसन्मुखता के बल द्वारा कोई चीज तब तक पसंद नहीं आती है जब तक उससे अच्छी कोई चीज हमें दिखाई नहीं देती। छोटा-सा गार्डन देखकर कहता है, बहुत सुंदर है। तब कहते हैं कि तुम मैसूर के वृंदावन गार्डन को देखो, शिकागो का मिलेनियम पार्क देखो, वह नहीं देखा इसलिए अच्छा लग रहा है, वैसे ही परिग्रह तब तक अच्छा लग रहा है जब तक अंदर में अपने वैभव को नहीं देखा है। एक बार निज वैभव को देख लोगे तो बाहर में सब फीका-फीका लगने लग जाएगा। किसी में रस व आनंद नहीं रहेगा; क्योंकि जगत में कहीं आनंद है ही नहीं, जगत में सुख है ही नहीं, यह तब पता चलेगा जब दूसरी कोई चीज देखेगा। इसीप्रकार जब अन्दर में आत्मा को देखेगा तब बाहर के सब रस बेरस लगने लगेंगे।

स्वसन्मुखता के बल के द्वारा इन सभी का त्याग करना ही सल्लेखना कहलाता है। अन्तरंग में मिथ्यात्व और कषाय का त्याग करो और बाहर में आहार और परिग्रह का त्याग करो।

सल्लेखना भी दो प्रकार की होती है - एक है क्रम-क्रम से त्याग करना और दूसरी का नाम है सर्वथा त्याग करना। अनुक्रम से आहार को कम करना अथवा सर्वथा त्याग करना काय सल्लेखना है तथा क्रोधादि कषाय को घटाना अथवा सर्वथा त्याग करना कषाय सल्लेखना है। सल्लेखना में भी त्याग करने की बात है, यह स्थिति पर निर्भर करता है कि यदि अचानक से मौत की स्थिति बन जाए तब तत्काल सब त्याग कर दिया जाता है, सल्लेखना अंगीकार कर ली जाती है और अंत समय नजदीक दिखाई दे रहा है तब क्रम-क्रम से त्याग किया जाता है। ऐसा भी होता है कि अंतिम समय में लगा कि अब कुछ भी शेष नहीं है, तब सब कुछ छोड़ दिया जाए।

सल्लेखना में अनुक्रम से आहार को कम किया जाता है। समाधिमरण पाठ में कहा है -

त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।

पण्डितजी यदि मुझे सल्लेखना की भावना है तो क्या सब आहार त्याग दूँ और आगे कहा कि औषधि भी। तो क्या पानी, आहार और औषधि सब त्यागना है? नहीं भाई।

दिन-रात मेरे स्वामी मैं भावना यह भाऊँ।
देहांत के समय में तुमको न भूल जाऊँ।।

'तुमको ना भूल जाऊँ' यह व्यवहार भक्ति तथा 'खुद को ना भूल जाऊँ' यह निश्चय भक्ति है। पंच परमेष्ठिों की भक्ति व्यवहार भक्ति तथा अपने ज्ञायक की भक्ति यह निश्चय भक्ति है। हे जिनेंद्र देव! दिन-रात यही भावना भाता हूँ कि मैं अपने आपको ना भूल जाऊँ, देहांत के समय सबको भूल जाऊँ, पर अपने आपको ना भूल जाऊँ, इसके लिए अपने आपको याद रखो, अभ्यास करो। जो चीज अभ्यास में रहती है, उसे भूलता नहीं है और जिसका अभ्यास नहीं होता वह चीज उपयोग से निकल जाती है।

त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।

अनुक्रम से भोजन को कम करना है, त्याग नहीं करना है और यदि त्याग की बात की हो तो क्या करें 'त्यागूँ आहार पानी' से पहले शत्रुता मिटा लो फिर त्याग की बात करेंगे।

शत्रु अगर कोई हो संतुष्ट उनको करदूँ।
समता का भाव धरकर सबसे क्षमा कराऊँ।।

पहले मिथ्यात्व और कषाय कम करने की बात कही है, फिर आहार और परिग्रह को छोड़ने की बात कही है, यही क्रम है, पहले कषायों का त्याग करो, शत्रुता को मिटाओ, दुश्मनी को मिटाओ, लड़ाई-झगड़ा बंद करो।

यदि शत्रु हो, वैसे हमारी किसी से शत्रुता नहीं है, किसी से दुश्मनी नहीं है, जो लोग हमें हमारा दुश्मन समझते हैं, हमारी उनसे भी शत्रुता

नहीं है, जो लोग हमें अपना विरोधी समझते हैं, हमारा तो उनके प्रति भी विरोध भाव नहीं है, हम तो समाधि में ही चल रहे हैं।

एक बार मैंने कह दिया की समाधि चल रही है, तब लोग बोले कि पण्डितजी अभी से समाधि, अभी आपकी उम्र ही क्या है। अरे भाई! समाधि शांत परिणाम को कहते हैं। इस हेतु लौकिक लड़ाई-झगड़े, कषाय और राग-द्वेष आदि से निवृत्ति होनी चाहिए।

दुनिया में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसके प्रति मेरे हृदय में रंचमात्र भी शत्रुता या नाराजगी का परिणाम हो। बड़े से बड़े विरोधी के प्रति भी यह प्रतिदिन बोली जाने वाली भावना है। दिन-रात यह भावना भाते हो और शत्रुता हृदय में पालकर बैठे हो, फिर कहते हो -

देहान्त के समय में तुमको ना भूल जाऊँ।

तब तो सारी भावना झूठी हो गई। यहाँ आहार, पानी और औषधि का त्याग नहीं कर रहे हैं, उसे छोड़ मत देना। यहाँ विचार अवसर बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द है, अवसर विचार करके, समय प्रसंग देख करके त्यागने की बात है।

भगवती आराधना में भी बहुत चर्चा की है कि मात्र भावना देखकर त्याग नहीं, अपितु समय, स्थिति आदि को देखना चाहिए। स्थिति देखे बिना यदि त्याग किया जाएगा तो उसे समाधि नहीं कहेंगे। देह चल रही है, स्वस्थ हो, अभी देह छोड़ने का सही समय नहीं आया है तो अभी त्याग का समय नहीं आया है। शत्रुता और कषाय तो रहे नहीं अर्थात् उनको तो पालना ही नहीं है और औषधि और आहार का त्याग भूमिका के अनुसार धीरे-धीरे करना है।

टूटे नियम ना कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ।

बिना आगे-पीछे का विचार किए, बिना परिस्थितियों को देखें आप त्याग कर बैठे, फिर तो नियम टूटेगा ही टूटेगा। इसलिए भावना हमारी ऐसी हो कि एक बार जिस चीज का त्याग कर देवें अब वह

नियम टूटना नहीं चाहिए। परिणाम में, हृदय में मजबूती होनी चाहिए। इसलिए अनुक्रम से आहार आदि के त्याग की बात कही है।

भगवती आराधना में समाधि की बहुत लंबी–चौड़ी विधि दी है और पूरा क्रम बतलाया है, सल्लेखना और समाधिमरण कराने वाले भी इसके विशेषज्ञ होते हैं, हमारे आचार्य शरीर विज्ञान के भी विशेषज्ञ हुआ करते हैं, वे शरीर की स्थिति देखते हैं, नाखून और आँखें देखकर वह अंदाजा लगा लेते हैं कि अब शायद इतना समय और शेष रहा है, उन्हें निर्यापक आचार्य कहते हैं। वह बहुत कुशल होते हैं, वह समय और प्रसंग देखते हैं कि इतने दिन पहले इस चीज का त्याग कराया जायें, फिर अन्य का, फिर किसी और का, इस तरह त्याग कराते हैं। ऐसे धीरे–धीरे जैसे समय हो वैसे आहार आदि की स्थिति को घटाते चले जाते हैं, क्रमपूर्वक धीरे–धीरे करके सबकुछ छुड़ाते हैं।

सल्लेखना के दो भेद हैं –

1. काय सल्लेखना

2. कषाय सल्लेखना।

आहार को कम करना अथवा सर्वथा त्याग करना यह काय सल्लेखना है, यह सल्लेखना का पहला प्रकार है तथा क्रोध आदि कषाय को घटानाअथवा सर्वथा त्याग करना यह कषाय सल्लेखना है।

जो त्याग जीवंतपर्यंत के लिए किया हो, वह यम है और थोड़े समय के लिए किया हो, वह नियम है।

जिनागम में जहाँ–जहाँ सल्लेखना की चर्चा की है वहाँ सबसे पहले कषाय, विषय और आहार के त्याग की बात है। दुनिया में सल्लेखना के नाम पर मात्र आहार को ही छुड़ाया जाता है, किसी का कषाय सल्लेखना की ओर ध्यान ही नहीं जाता है। कषाय भी छोड़ी जाती है, वह भी कम की जाती है, परिणाम में सरलता होती है, इसके बिना सल्लेखना पूरी नहीं होती है।

कषाय सल्लेखना – मिथ्यात्व और कषाय आदि का क्रम से छूटते चले जाना, मंद होते चले जाना इसमें भी मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी तो पूरी तरह चली गई, अप्रत्याख्यान भी चली गई, प्रत्याख्यान धीरे-धीरे मंद हो रही है, संज्वलन भी मंद हो गई, अतः विचार करके श्रावक को अपने मरण के अंत समय में अवश्य ही सल्लेखना करनी चाहिए।

जिसने जीवन के अंतिम समय तक धर्म व संयम को पकड़े रखा, वह ही साथ में जाएगा और जिसने अंत समय मरण के 6 महीने पहले धर्म छोड़ दिया, तो फिर अगले जन्म में वह धर्म साथ नहीं जाएगा। अगले जन्म के पहले तक जो साथ होगा, वह अगले समय में साथ होगा, तब अंत समय तक साथ रखने की भावना भाना। आचार्यदेव गारंटी देते हैं कि यदि अंत समय तक धर्म बनाए रखा तो अगले भव में साथ पहुँचेगा, इसकी गारंटी हम तुम्हें देते हैं।

दुनिया में अंतिम समय में 4-6 महीने तक कई लोग अपनी सुध-बुध खो देते हैं, उन्हें होश नहीं रहता है, अंत समय में जमीकंद खाने लगते हैं, रात्रि भोजन करने लगते हैं, भ्रष्ट हो जाते हैं, जीवनभर कितना भी धर्म किया हो; लेकिन अंतिम समय में छोड़ दिया, तब अगले भव में नहीं जाएगा। अंत तक यदि धर्म साथ में है, तब आगे भी साथ में जाने का अवसर है, मैंने जीवनपर्यंत पुण्यरूपी कार्य किए हैं तथा धर्म का पालन किया है, वस्तुस्वभावरूप धर्म को, रत्नत्रयरूप धर्म को, आत्मस्वभावरूप धर्म को भी जाना है, उस धर्मरूपी धन को मेरे साथ ले जाने में यह एक सल्लेखना ही समर्थ है। इसलिए सम्यग्दर्शनरूपी धर्म अंत समय तक जिसके बना रहा और कदाचित् उनके मृत्यु भी आ जाए तब भी विग्रह गति में सम्यग्दर्शनरूपी धर्म साथ में जाएगा, अगले भव में भी साथ में जाएगा, यदि मरण के पहले छूट गया तब अगले भव में साथ नहीं जाएगा, सप्तम नरक में जिन

नारकी जीवों को सम्यग्दर्शन होता है, उनका सम्यग्दर्शन मृत्यु के अन्तर्मुहूर्त पहले नियम से छूट जाता है।

अब अगले भव में सम्यग्दर्शन साथ में नहीं जाएगा, क्योंकि पहले ही छूट गया, जिसको अंतिम समय तक सम्यग्दर्शन था अब वह मरकर देवगति, भोगभूमि, नरक आदि गति में भी जाए, तब भी सम्यग्दर्शन रहेगा। अब यदि मरण समय संन्यास धारण करेंगे तब सर्वधर्म परलोक में साथ जाएगा, कोई भी सम्यग्दर्शन हो साथ में जाने में कोई बाधा नहीं है क्षायिक सम्यक्त्व तो साथ में जाता ही है, क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन भी साथ जाने में कोई दिक्कत नहीं है, क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन तो 66 सागर तक अधिकतम एक साथ रह सकता है और उपशम सम्यग्दर्शन का काल ही अन्तर्मुहूर्त मात्र है, वह साथ में नहीं जा सकता और यदि यहीं पर परिणाम भ्रष्ट हो जाएँ, तब दुर्गति में गमन होगा।

सम्यग्दृष्टि जीव के तो उत्तम गतियाँ बँधती हैं, इसलिए ऐसी भावनापूर्वक श्रावक को समाधिमरण करना योग्य है, सम्यग्दृष्टि नरक में भी जाते हैं, किसी ने यदि पाप अवस्था में बिना सम्यग्दर्शन के नरक आयु बाँध ली तब नरक में तो जाना पड़ेगा, पर बाद में सम्यग्दर्शन ले लिया तब सम्यग्दर्शन के साथ प्रथम नरक में जाएगा, जिन जीवों की नरकायु बँध गई हो, उन्हें सल्लेखना के भाव नहीं आते, जिनके नरक, तिर्यंच आदि अधोगति बँध जाती हैं, उन्हें समाधि, सल्लेखना तथा व्रत लेने के भाव नहीं आते, उनका असमय में ही मरण होता है। समाधि-मरण की भावना तो देवगति में जाने वालों के होती है।

यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावे।
तहतैं चय नर जन्म पाए मुनि ह्वै शिव जावे।।

– छहढाला, चौथी ढाल – 15

श्रावक के बारह व्रतपूर्वक अंतिम समय में समाधि सल्लेखना हुई तब ऊर्ध्वलोक ही जाते हैं। यहाँ मिथ्यात्व तो पहले जाएगा, फिर कषाय

जाएगी, फिर धीरे-धीरे आहार, पानी का त्याग होगा और मरणपूर्वक ऊर्ध्वगति की प्राप्ति हो जाएगी

जब समाधि के भाव होते हैं और अपना अंत समय जान लेता है तब हॉस्पिटल जाने के भाव नहीं आते हैं। आसक्त अज्ञानी जीव बेचैन पड़े हैं और परिवारजन हॉस्पिटल ले गए, तब फिर परिणाम जैसे होंगे वैसी गति होगी। हॉस्पिटल जाना कोई महान अनर्थ नहीं है; परंतु यहाँ एलोपैथिक अशुद्ध दवाइयों की बात है। यदि कोई घर में गिरकर बेहोश हो गया और उसकी भावना तो समाधिपूर्वक मरण की है; क्योंकि बहुत उत्कृष्ट जीवन चल रहा है और बेहोशी की हालत में परिवारजन अस्पताल ले गए। जब आँखें खोलीं तब इंजेक्शन लगे हुए थे, उसने स्वयं को हॉस्पिटल में पाया - ऐसी बहुत प्रकार की परिस्थितियाँ बन जाती हैं।

यह सब इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह व्यक्ति कितना संयमी था। एक व्यक्ति तो मुनिराज था तब उन्हें तो अस्पताल में लेकर नहीं जाएँगे। दूसरा व्यक्ति दसवीं-ग्यारहवीं प्रतिमा वाला था, उन्हें भी अस्पताल नहीं ले जाना चाहिए; क्योंकि उनका तो हमें भेष दिखाई दे रहा है, अब नीचे उतरते जाएँगे, तब बहुत प्रकार की परिस्थितियाँ बनेंगी। भावना ऐसी भायी कि मिथ्यात्व और कषाय तो पहले ही छूट जाए। पश्चात् आहार-औषधि आदि भी क्रम से छूटती जाएँ।

सल्लेखना धारण करने की तीव्र भावना -

मरणान्तेऽवश्यमहं विधिना सल्लेखनां करिष्यामि।

इति भावनापरिणतोऽनागतमपि पालयेदिदं शीलम्।।

अर्थ - मैं मरण समय में अवश्य ही विधिपूर्वक समाधिमरण करूँगा। - ऐसी भावना सहित श्रावक, जो प्राप्त नहीं हुआ है, ऐसे शील (स्वभाव) को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ तीव्र भावना की बात कर रहे हैं, जिससे आप येन-केन-प्रकारेण सल्लेखना धारण कर लो। सल्लेखना में एक होती है तात्कालिक सल्लेखना और एक होती है पूर्व से तैयारी वाली सल्लेखना।

मरण के समय में शास्त्रोक्त विधि से अवश्य ही सल्लेखना अंगीकार करूँगा, यहाँ हमने मरण के समय सल्लेखना धारण करने की भावना तो भायी; परंतु परेशानी इसमें आ रही है कि हमारा मरण कब होगा? यह हमें तो पता ही नहीं है, मरण का समय अर्थात् क्या? 3 साल बाद कि 30 साल बाद, 3 दिन बाद कि 30 दिन बाद; क्योंकि हमें मरण का तो पता ही नहीं है। कल एक बड़े विद्वान के सुपुत्र का स्वर्गवास हो गया। देखो यह सब होता रहता है, कब किसका समय आ जाए, कब मरण आ जाएगा, इसका हमें पता नहीं है।

आपको यदि समाधिपूर्वक मरण करना है तो तैयारी आज से ही करनी पड़ेगी, जीवन के अंत का इंतजार नहीं करना चाहिए, बुढ़ापे का इंतजार नहीं करना चाहिए।

श्लोक की प्रथम पंक्ति में तो भावात्मक बात की है कि मरण के समय हम अवश्य समाधिमरण लेंगे। मैं मरण के समय शास्त्रोक्त विधि से समाधिमरण करूँगा - इस प्रकार भावनारूप परिणति करके मरण काल आने के पहले ही सल्लेखना व्रत पालन करना चाहिए।

उसे मरण का समय ही तो पता नहीं लग रहा है, जैसे एक क्रिकेट मैच में 20 ओवर का मैच है, उसमें पहली टीम ने 100 रन का स्कोर किया है। हम दूसरी टीम में खेल रहे हैं, जिसे 20 ओवर में 101 रन बनाने हैं। अब हम सोचते हैं कि मामूली स्कोर है, 5 की रन रेट में बनाते हैं, बन जाएँगे। हमने तो पिछले मैच में 200 रन का स्कोर खींच लिया था, बना लेंगे। एक ओवर निकल गया जीरो रन, जीरो विकेट है। 5 ओवर जीरो रन अभी तो बना लेंगे। 10 ओवर निकल गए जीरो रन

है, अब थोड़ा-सा कठिन है, पर हमें अपनी बैटिंग पर पूरा भरोसा है, बना लेंगे। अभी भी टाइम पास किए जा रहे हैं। 15 ओवर में जीरो रन अब क्या करें ? लास्ट ओवर बचा है, 100 रन बनाने हैं 90 रन या 80 रन बनाने हैं, अब कहानी खत्म हो चुकी है, हाथ मलता रह गया है, अब कुछ होने वाला नहीं है, लास्ट ओवर में कुछ भी नहीं होता है। जिंदगी बहुत लंबी है, 60 साल, 70 साल, 80 साल तक तो जीवित रहूँगा, बुढ़ापे में धर्मध्यान कर लूँगा, अभी तो बचपन है, बचपन में कोई धर्मध्यान किया जाता है क्या ? ऐसे में ही बचपन निकल गया और जीरो रन। दो-दो साल का एक-एक ओवर तो 100 साल की जिंदगी हो गई। 50 ओवर का मैच है 20 साल का हो गया मतलब 10 ओवर निकल गए, 30 साल का हो गया और धर्म के नाम पर जीरो और 15 ओवर निकल गए। 40 साल के हो गए अर्थात् 20 ओवर निकल गए, स्कोर वही जीरो है, धर्म के नाम पर कुछ नहीं किया अभी तो बहुत ओवर बाकी हैं, सब आराम से हो जाएगा, चिंता मत करो, पर भाई यह क्यों भूल जाते हो कि यह बीच में बोल्ड भी तो हो सकता है, कैच आउट भी तो हो सकता है – ऐसा होता है ना ?

हम तो सोच रहे थे कि 80 साल तक जिएँगे और 40 साल की उम्र में ऐसा झटका लगा कि विकेट उड़ गया। कोई 35 में तो कोई 20 में तो कोई 15 ओवर में ही आउट हो गया, कोई जीरो पर हो जाता है, कोई खेल ही नहीं पाता है। कैसी-कैसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं।

विचारणीय बात है, बाबूजी कहते हैं – एक बड़े हॉल की नींव पौन घंटे में नहीं भर सकती है; लेकिन पौन घंटे में मुक्ति की नींव सम्यग्दर्शन हो सकता है, जिसके दम पर मुक्ति महल खड़ा हो सकता है। सोचो तो जरा, कोरोना के दौरान विश्व में 50 लाख से ज्यादा विकेट गिरे हैं, बिना कोरोना के भी लाखों लोग मरे। क्या पता कब शाम ढल जाए, कब अंत आ जाए, अगले क्षण का भरोसा नहीं

है, जीवन का अंतिम पल कौन-सा होगा - इस बात का विचार करते हुए, चिंतन करते हुए हमें निरंतर सल्लेखना को अंगीकार करने की भावना भानी चाहिए।

सत् अर्थात् सम्यक् प्रकार से। **लेखना** अर्थात् कषायों को छेद करना, कृश करना सल्लेखना कहलाता है।

हम निगोद से आए थे, मनुष्य पर्याय में बैटिंग करने का मौका मिला था, एक इन्द्रिय आदि पर्यायों को पार करके मनुष्य दशा मिली थी, विकेट गिर गया अर्थात् आउट हो गए। अब दोबारा एक इन्द्रिय पर्याय में चलो अब बुलावा आ गया है, किस्सा खत्म हो गया है, अब कहानी बस रह गई है।

कल जुआ जुआ के किस्से थे, अब बस खंडहर के हिस्से हैं।
जग के वैभव का हाल है यह, यह जीते-जी के किस्से हैं।।

एक से एक हीरो फिल्म स्टार दिखते हैं, अब खत्म कहानी, कुछ लोग बस किस्से-कहानियों में स्थान पाते हैं, कुछ इतिहास बन जाते हैं, नाम के पहले (स्वर्गीय) लग जाता है, कौन किसको पूछता है? किसको क्या लेना-देना है? आज सुभाषचंद्र बोस, नेहरूजी और गांधीजी को कौन पूछता है? कल खत्म होने पर वापस चला जाएगा फिर समय नहीं रहेगा इसलिए सल्लेखना की बात कर रहे हैं।

सत् अर्थात वस्तुस्वरूप, सत्स्वभावी, सत्द्रव्यलक्षणम्। स्वयं अपनी आत्मा का अवलंबन लेकर कषायों को कृश करना, वह सल्लेखना है। काय और कषाय दोनों को कृश करना, उसके अभ्यंतर और बाह्य दो भेद हैं - काय के कृश करने को काय सल्लेखना कहते हैं। जीवन के अंत समय में आहार आदि को धीरे-धीरे त्यागना।

अन्न छोड़ दिया अब फलों पर आ गए, अब फल त्याग दिए, जूस पर आ गए, लिक्विड के बाद दूध और फिर जल पर आ गए - इस तरह

से उनको कम करते चले गए। लेखना अर्थात् कृश करना, काटना, घटाना। कषायों को कृश करने को कषाय सल्लेखना कहते हैं, अभ्यंतर कषायों के कृश करने को अभ्यंतर सल्लेखना कहते हैं।

काय भी कृश की जाएगी और कषाय भी कृश की जाएगी। कषाय और काय दोनों के कृश करने में लोगों की दृष्टि काय के कृश करने पर ही जाती है, हमने सल्लेखना करानेवालों को देखा है, हम सल्लेखना करेंगे तब परिणाम की तरफ ध्यान देंगे। अन्य लोग हाथ-पैर दबाते रहते हैं और णमोकार मंत्र का जाप करते रहते हैं, सिर गोद में रख लेते हैं, सहलाते रहते हैं और अंत समय तक णमोकार मंत्र का पाठ चलता है।

सल्लेखना या संन्यास? संन्यास निवृत्ति को कहते हैं, धोनी ने संन्यास ले लिया, संन्यास अर्थात् जिस क्षेत्र में थे उस क्षेत्र को छोड़ना। व्यापार से निवृत्त हो गए अर्थात् संन्यास ले लिया। घर-गृहस्थी से संन्यास ले लिया। हम घर-गृहस्थी की उलझन में अब नहीं उलझेंगे, इसका नाम सल्लेखना लेना है। हम अब नाच-गान के कार्यक्रमों में, विवाह आदि के कार्यक्रमों में नहीं जाएँगे, इसका नाम सल्लेखना है।

यह निवृत्ति प्रवृत्ति के बिना किसी काम की नहीं है। लोग कहते हैं कि हमने गवर्नमेंट जॉब से रिटायरमेंट ले लिया और पूछा कि अब क्या करोगे तो कहते हैं कि अब एक फैक्ट्री डालेंगे। आप वहाँ से आकर के कहीं अन्य काम तलाशने लगे, काम करने लगे, फिर वह रिटायरमेंट किसी काम का नहीं है, इसलिए इस निवृत्ति की प्रवृत्ति चाहिए। यह प्रवृत्ति कौन-सी जगह हो रही है, आपकी प्रवृत्ति यदि स्वरूप में है तब तो आपकी निवृत्ति सार्थक है, यदि आपकी प्रवृत्ति स्वरूप में नहीं है, तब आपकी निवृत्ति जीरो है अर्थात् किसी काम की नहीं है, अच्छे-अच्छे रिटायरमेंट लोगों को तास-पत्ती खेल कर टाइम पास करते हुए देखा है।

वास्तविक सल्लेखना आत्मस्वरूप के अवलंबनपूर्वक होती है। पहले अपने आप को देखो, फिर जो निवृत्ति होगी वह निवृत्ति सच्ची होगी, कोई कहे कि निवृत्ति लूँगा तो प्रवृत्ति होगी, तो वह गलतफहमी में है, सबसे पहले आत्मस्वरूप का अवलंबन लें। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव सम्यग्दर्शन पहले लेते हैं भले ही फिर षट्खंड की विभूति का भोग करते रहें, राज-पाट नहीं छोड़ा है, सम्यग्दर्शन है अभी चौथा गुणस्थान है, सब चल रहा है।

अब जब अंदर में तैयारी और अधिक बढ़ गई, अपने स्वभाव के अवलंबन की भावना और अधिक बलवती हो गई, अपने स्वभाव को देखने की रुचि और अधिक बढ़ गई, समय कम पड़ने लगता है, स्तुति, वंदना पढ़ी जाती है, बस सुनते जाओ - ऐसा चलता रहता है।

लेकिन भाई इससे परिणाम स्थिर हुए कि नहीं? उसके लिए तो किसी ने उपदेश ही नहीं दिया, उसके लिए तो कोई बात ही नहीं की है, आचार्य कुन्दकुन्द ने उपयोग की स्थिरता के लिए अष्टपाहुड में विस्तृत चर्चा की है, अरे भाई! तुम कौन से कष्ट का विचार कर रहे हो, शरीर का कष्ट तो कष्ट है ही नहीं; क्योंकि शरीर और आत्मा में तो अत्यंताभाव है और इस अत्यंताभाव को समझने की जरूरत है। शरीर आपको कष्ट देने में समर्थ नहीं है, शरीर की पीड़ा आपकी पीड़ा नहीं है, आप इससे उपयोग हटाएँ, आप अपने स्वरूप का चिंतन कीजिए। मूल शुद्धात्म तत्त्व की बात स्मरण कीजिए; क्योंकि जब तक देह से उपयोग नहीं हटेगा तब तक काम नहीं चलेगा। यह यथार्थ सल्लेखना है, यह सल्लेखना की विधि है। तुम चैतन्य हो, तुम ज्ञानानंद स्वभावी हो। त्रिकाल ध्रुव, आत्मतत्त्व हो, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ा है, यह रोग तुम्हारा नहीं है, अरे राग का भी प्रवेश तुम्हारे में नहीं है, इस बात का विचार करो कि जो छूट जाएगा वह तुम्हारा था ही नहीं, शास्त्रों में बड़ी सुंदर बात की है।

भाई काय सल्लेखना में शरीर शिथिल होगा और अंतरंग सल्लेखना में कषाय शिथिल होगी।

मरण समय नहीं आने पर भी आप शील का, संतोष का पालन करो। मैं अवश्य ही मरण समय विधिपूर्वक शील का पालन करूँगा – ऐसी भावनापूर्वक श्रावक को जो प्राप्त नहीं हुआ है ऐसे शील स्वभाव को प्राप्त करता है। आत्मतत्त्व के अवलंबन के लिए झपट्टा मारता है। तब विचार बना कि सबको छोड़ो, अब यह सब नहीं चाहिए। हमें अंदर में स्वभाव मिल गया है, जिससे हमें तृप्ति मिलेगी, अब अंदर में समा जाने के लिए बस एक लगन और एक ही काम और दूसरा कोई काम नहीं, इसका नाम सल्लेखना होता है।

सल्लेखना कहो या संन्यास कहो, उसका धारण तो मरणान्त में होगा। यह कहा कि मरणान्त में होगा तब कह रहे हैं कि हर समय तुम्हारा अन्तिम समय नजदीक आता जा रहा है, जैसे-जैसे दिन घटते जा रहे हैं, मृत्यु निकट आती जा रही है, 2023 निकल गया, 2024 आ गया, 2024 निकल गया, 2025 आ गया, सोमवार निकल गया मंगलवार आ गया, मंगलवार निकल गया बुधवार आ गया, दिन-प्रतिदिन निकलता चला जा रहा है, सूर्य उदय होता है अस्त होता है। सुबह होती है शाम होती है, जिन्दगी यूँ ही तमाम होती है।

समय-समय इस जीव की आयु घटने की अपेक्षा प्रति समय मरण होता है। हर समय मरण होता है। बाबू जुगलकिशोरजी देव-शास्त्र-गुरु पूजन में लिखते हैं –

यों भावकरम या भावमरण सदियों से करता आया हूँ।

भावकर्म और भावमरण दोनों ही करता आया हूँ, पल-पल मर रहा हूँ, प्रतिसमय कषायों में मर रहा हूँ, उसका तो अंदाजा ही नहीं है।

मोक्षमार्ग प्रकाशक के पृष्ठ नम्बर 38 पर पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं – क्रोध की पीड़ा सही नहीं जाती, आत्महत्या करके सुखी

होना चाहता है, मन को ठेस बर्दाश्त नहीं होती, जहर खाकर मर जाता है, मायाचार प्रकट होने पर दिलो-दिमाग पर ऐसा छा जाता है कि आत्महत्या कर लेता है, फाँसी पर लटक जाता है, ट्रेन के आगे कूद जाता है। अखबार में खबरें आती हैं कि कोरोना से संक्रमित था और ट्रेन के आगे आकर मर गया, जहर खाकर मर गया, इसका मतलब यह कोरोना बर्दाश्त नहीं हो रहा था, लोभ की पूर्ति नहीं होती है, पैसा चुकाने में समर्थ नहीं होता है, तो परिवार को साथ लेकर आत्महत्या कर लेता है। हर समय निरंतर मर रहा है, कभी गर्मी से तो कभी सर्दी से, कभी ठंड से मर रहा है, हर पल मौत आ रही है - इसका नाम भावमरण है।

समय-समय मरण हो रहा है और उसके अंत में संन्यास धारण किया जाएगा कि पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा करना कि मैं मरण काल में संन्यास धारण करूँगा ही। 12 वर्ष की उत्कृष्ट सल्लेखना की भावना हो सकती है, अतः इस प्रतिज्ञा की अपेक्षा यह शील पहले ही पालन करने में आता है, अंदर से इस पर विचार होना चाहिए।

हर समय इस बात का विचार चलना चाहिए कि सल्लेखना लूँगा, आत्मस्वरूप को देखूँगा, कषायों को तोडूँगा, विभाव को छोडूँगा, परद्रव्य से नाता तोडूँगा, उलझूँगा नहीं, अभी तक बहुत उलझा।

अब तो हमें यह बात समझ में आ गई है कि किसी का भी जीवन कभी भी पूरा हो सकता है, सब कषायों से निवृत्ति की भावना अभी क्यों नहीं रखूँ। क्योंकि मरण समय मनुष्य के परिणाम बहुत दुःखी हो जाते हैं, इसलिए सल्लेखना का विचार आना बहुत दुर्लभ हो जाता है, अंत समय जब आता है तब व्यक्ति के परिणाम बहुत विचलित हो जाते हैं, छूटने का डर लगने लगता है, घबराहट होने लगती है, सब छूट जाएगा, मैं चला जाऊँगा तो क्या होगा, जीवन पूरा हो जाएगा तो क्या होगा, मुझे कोई व्यक्ति बचा लेवे, मैं अभी नहीं मरना चाहता हूँ,

अभी तो बच्चों की शादी करनी है, पोते का मुँह देखना चाहता हूँ। यह मौत की चर्चा मात्र से डरता है, मौत का खौफ है इसे।

सप्त भयों में मौत का भय बहुत खतरनाक है, सड़क पर फुल स्पीड में आई हुई गाड़ी यदि आपके पास आकर एक फिट पर रुक जाती है तो 100 मिनट तक धड़कन नहीं रुक पाती है। आज तो भाईसाहब मर ही गया था, सामने वाले से लड़ने लगता है। कुटुंबीजनों, धन आदि से ममत्व भाव नहीं छूटता, तब सारे संयोगों का एक साथ छूट जाने का नाम मौत है। घबराहट होती रहेगी, जिस समय में ऐसा लगने लगता है कि पता नहीं अब क्या होगा, अब कमरे से बाहर निकलेगा कि नहीं, हॉस्पिटल से छुट्टी मिलेगी या नहीं। बहुत बड़ा चार-पाँच घंटे का ऑपरेशन होना हो तो अंतिम समय में सभी से माफी माँग करके जाता है, पता नहीं वापस लौटेगा कि नहीं, ऑपरेशन सफल होगा कि नहीं, यह सब छूट जाने की घबराहट होती है, जिनके साथ ऐसी स्थिति बनी है वह ही उसका अनुभव कर सकते हैं, सब कुछ बिल्कुल अंधकार में दिखने लगता है। कुछ नहीं बचेगा, पता नहीं मैं कहाँ चला जाऊँगा, मेरे बच्चे यह सब चले जाएँगे। इतना पैसा कमाया सब यहीं छोड़कर जाना होगा, वह किसी काम नहीं आएगा, ऐसी फीलिंग होती है। करोड़ों रुपए की संपत्ति वाले को डॉक्टर ने लास्ट स्टेज का कैंसर बता दिया, अब उसकी मनःस्थिति कैसी होगी?

वह मौत के डर से ही मर जाता है। किसी देश में ऐसी पद्धति प्रयोग में लाते थे कि मजिस्ट्रेट ने सजा सुनाई तो व्यक्ति को पट्टी बाँधकर सुई चुभाकर नल चालू कर देते और पटपट की आवाज सुनाई देतीं, तब उसे कहते कि तुम्हारा खून टपक रहा है और वह घबराहट में ही मर जाता। साइकोलॉजिकल हत्या हो गई, सुई चुभाई और कह दिया कि साँप ने काटा है और पोस्टमार्टम में भी शरीर में जहर निकल आता है, दिमाग में वैसा ही हो जाता है।

अंत समय में ममत्व नहीं छूट पाता है, इसलिए आज से छोड़ने का प्रयत्न करो, आप सल्लेखना की भावना भाओ, यदि यह भावना दृढ़ नहीं होगी तो अंतिम समय में बहुत तकलीफ होगी, ममत्व आज छूट जाएगा ऐसा नहीं कह रहे हैं; लेकिन भावना भाओ कि ममत्व भी छोड़ूँगा, कषाय भी छोड़ूँगा और काय को भी कृश करूँगा। आज का समय है सल्लेखना की दृढ़ भावना भाने का और जब समय आएगा तब डर नहीं होगा; क्योंकि उसी की भावना जीवनभर भाता रहा है, जिसने जीवनभर सल्लेखना की भावना भायी नहीं, भायी तो फिर रोता है, उसे सल्लेखना नहीं होती है। जिसका ममत्व छूटता है, उसी की सल्लेखना होती है, ममत्व भाव छूटने से, पाप बंध न होने से, नरक आदि गति का भी बंध नहीं होता, इसलिए मरण समय अवश्य ही सल्लेखना रखने का परिणाम रखना चाहिए।

हे भव्य जीवो! सल्लेखना की भावना भाओ, यह सल्लेखना मुक्ति से मिला देने वाली है, जीवन को सफल करने वाली है, हमें धर्म से विमुख नहीं करती, अपितु हमारे धर्म को अगले भव में साथ ले जाने वाली है, यह वह साधन है, जिसके द्वारा हम परलोक तक धर्म के साथ चल सकते हैं, दुनिया में कोई भी ऐसी चीज नहीं दिखाई देती, जिसे हम परलोक तक ले जा सकते हों; लेकिन यह सल्लेखना ऐसी है जो हमें धर्म को साथ ले जाने के लिए बल प्रदान करती है। अंतिम समय में समाधिमरण नहीं होगा तब सब खत्म हो जाएगा, इसलिए प्रत्येक जीव ऐसी भावना भाता है –

देहान्त के समय में तुमको ना भूल जाऊँ।

बस दो ही शरण हैं –

निश्चय शरण आपको आप, व्यवहारी परमेष्ठी जाप।

दुनिया में दो के अलावा तीसरा कोई शरण नहीं है – एक शरण है पंचपरमेष्ठी दूसरा शरण है अपना आत्मा। यदि पंचपरमेष्ठियों की

शरण से हटे तो आत्मा की शरण में आ जावे और आत्मा की शरण से हटे तो पंचपरमेष्ठियों की शरण में चला जाए, बस यही वास्तव में मूलत: दो शरण हैं।

धर्मात्मा निकट हो चर्चा धर्म सुनावे।
वे सावधान रखे गाफिल ना होने पाऊँ।।

धर्मात्मा साधर्मियों के निकट होने की भावना इसलिए भाते हैं क्योंकि वे धर्म की बातें हमें सुनाएँगे? कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जब धर्मात्मा निकट नहीं हों तब क्या करोगे? सारे जिनागम में साधर्मियों का साथ बहुत अच्छा कहा गया है, धर्मात्माओं का स्थान सबसे बड़ा स्थान है; क्योंकि यह लंबे समय तक साथ रहने वाला है, सिद्धालय तक जाने वाला है; लेकिन ये प्रवचन करने वाले, सुनाने वाले, वक्ता, श्रोता नहीं मिले तब फिर क्या करें? यदि आधी रात को मरण हो गया, धर्मात्मा निकट नहीं हुए तो क्या करें? इसलिए सबसे अच्छी बात यही है कि आप अपने परिवार को ही साधर्मी बना लीजिए। आपके साथ में रहने वाले पति-पत्नी, चाचा-ताऊ, बच्चे-बूढ़े आदि को यदि तत्त्वज्ञान से जोड़ लिया जाए तब यह चिंता करने की जरूरत नहीं होगी कि धर्मात्मा निकट हो; क्योंकि घर ही धर्मात्माओं का हो जाएगा - ऐसा ही माहौल बनाना कि हमारे पति-पत्नी आदि सभी परिवारजन साधर्मी हो जाएँ। अंत समय में हमारे परिणाम बिगाड़ने वाले कोई ना रहें, इसकी तैयारी हमें आज से ही करनी पड़ेगी।

यदि हमें अंत में अपने परिणाम नहीं बिगाड़ने हैं, अंतिम समय समाधिपूर्वक बिताना है, तब आपकी समाधि कौन कराएगा। यदि आधी रात को पैर लड़खड़ाने के कारण हम बाथरूम में गिर जाएँ, तब ऐसे समय में कौन संभालेगा। यदि 2 घंटे में मरण हो गया तब ऐसे समय में परिणाम को संभालने वाला कौन होगा? **साधर्मी वह जो आपके धर्म की चिंता करें, विधर्मी वह जो आपके धर्म को छुड़ाकर**

धन की चिंता करें। आपके धर्म की रक्षा होनी चाहिए।

धर्मात्मा आपके धर्म की चिंता करते हैं। बच्चों को संस्कार दें, उन्हें तत्त्वज्ञान दें और उन्हें जीवन की क्षणभंगुरता के बारे में समझाएँ – 'बेटा यह जगत दुनियादारी काम नहीं आएगी, यदि परभव में कुछ साथ जाएगा तो तेरा किया यह धर्म ही साथ जाएगा।'

ना सोना काम आएगा ना चाँदी काम आएगी।

'यह सब मोह–माया है' ऐसा कहने वाले तो मिल जाएँगे; लेकिन सच में उसे मोह–माया समझें। 25, 50 और 100 करोड़ में कोई दम नहीं है, यह बात जिसको समझ में आ जावे उसके लिए सारा जैन शासन ज्योतिष, व्यंतर, भवनवासी, कल्पवासी देव उसकी जय–जयकार करने के लिए बैठे हुए हैं। कुछ ऐसा काम तो करो कि आपके ऊपर संकट–परेशानियाँ नहीं आएँ। यदि आपके पास पैसा नहीं है, खाने की व्यवस्था नहीं है, तब उसकी चिंता मत करना। स्वर्ग से देवता आएँगे और व्यवस्था करेंगे; तुम तो आराधना की बात विचारना।

समाधिमरण आत्महत्या नहीं है। यह सारी भावना भव सुधारने के लिए है – कहा जाता है कि 'भावना भवनाशिनी' अर्थात् भावना से भव खत्म हो जाते हैं, इसलिए आप भावना तो भायीए। लोग कहते हैं कि जिस समाधि की आप बात कर रहे हो, वह तो आत्महत्या है; क्योंकि सल्लेखना के काल में कषाय और काय दोनों को कृश किया जाता है। आप शरीर को शिथिल अर्थात् कमजोर कर रहे हैं, जो व्यक्ति धर्म के साधनरूप इस शरीर को संभालता नहीं, वह आत्महत्या करता है।

जो इस शरीर की परवाह नहीं करता, वह आत्महत्या करता है। जो इस शरीर को पर्याप्त खिलाता–पिलाता नहीं, वह आत्महत्या की तैयारी कर रहा है। यह हमारी जवाबदारी बनती है कि हम शरीर को संभालें, जिनवाणी यह आज्ञा दे रही है कि आप शरीर को दोनों समय भोजन करायें। योग्य आहार, पोषण तत्त्व इस शरीर के लिए जरूरी हैं।

यह शरीर आराधना में निमित्त बनता है। आप यदि अपनी आँखों को संभाल कर नहीं रखोगे, तब जिनेंद्र भगवान के दर्शन कैसे करोगे? आप यदि अपने कानों की सुरक्षा नहीं करोगे फिर जिन वचन कैसे सुनोगे? यह तत्त्व की बात सुनने के लिए, देशना लब्धि के पात्र बनने के लिए कानों का सही होना जरूरी है। सम्यग्दर्शन के लिए, जीवन में मोक्षमार्ग प्रकट करने के लिए देशना लब्धि जरूरी है, सुनने का निषेध कर दिया उसने पाँच इंद्रियाँ होने की चाह नहीं रखी, जिसने कहा कि मुझे नहीं सुनना, उसने एक इंद्रियों से चार इंद्रिय होने का कर्म बंध लिया।

विकलत्रय और एक इंद्रिय होने का कर्म बाँध लिया, ये कारण मिले हुए हैं, इसलिए सुनने की भावना भाओ। कोई ऐसा काम मत करो, जिससे आपकी देह आपकी आराधना में बाधक बने। समाधि-मरण आत्महत्या नहीं है, जब शरीर से धर्म साधन हो सकता है, रत्नत्रय का पालन हो सकता है, तपश्चरण हो सकता है, देह सही-सलामत है। आप व्रत, तप, संयम का पालन कर पा रहे हैं, धर्मधन निभाया जा रहा है, फिर सोच रहे हैं कि भोजन को धीरे-धीरे छोड़ दिया जाए। तब भैया दुर्गति के पात्र हो जाओगे, तब यह आत्महत्या कहलाएगी।

सल्लेखना आत्महत्या नहीं है; क्योंकि इसमें भोजन नहीं छुड़ाया जाता है, दुर्भिक्ष प्रतिकूलता की बात की जाती है। जब शरीर को न संभाला जा सकता हो, शरीर के बचने की, सुरक्षित रहने की संभावना ही ना बची हो, तब यह स्टेप उठाया जाता है कि अब देह छूटती है तो छूट जाए। हमें देह नहीं छोड़नी है, यदि मर जाने पर रोता है तब भी सल्लेखना बिगड़ गई; क्योंकि सल्लेखना में न तो मरने की इच्छा होती है और न ही जीने की चाह होती है, सहज रहते हैं।

जीने की हो ना वांछा मरने की हो ना इच्छा।
परिवार मित्र जान से मैं मोह को छुड़ाऊँ।।

सल्लेखना आत्महत्या नहीं है, इसे आत्महत्या मत समझिए; क्योंकि मैं मरना नहीं चाहता। 'मैं मरना नहीं चाहता' इसका मतलब यह नहीं है कि मैं मरने से डर रहा हूँ या मैं और जीना चाहता हूँ, सहजता है। सहजता से समाधिमरण है, सहजता में शांति है, शान्ति में समाधि है।

हजारों वर्षों पहले अमृतचन्द्राचार्य ने लिख दिया तुम हमारे ऊपर मुकदमा कैसे करते हो? जिनवाणी पुकार-पुकार कर कह रही है, दिगंबर-श्वेतांबर सभी परंपराओं में स्पष्टरूप से इसका उल्लेख किया गया है कि यह आत्महत्या नहीं है।

सौ प्रतिशत जब निर्णय हो गया कि अब मौत को टाला नहीं जा सकता तथा अब तो मरण नजदीक ही है, कुछ दिन की आयु बची है, 6 महीने से ज्यादा जीवित नहीं रहेंगे, यह शरीर खाने लग जाता है।

वृद्धावस्था में जैसे-जैसे मौत नजदीक आने लगती है, तब शरीर भोजन ग्रहण नहीं करता कि अब खाना नहीं खाया जाता। अब और कम कर दो, अब और कम कर दो, इसका तात्पर्य यह है कि मौत प्रतिदिन नजदीक आती जा रही है, यह प्रक्रिया स्वचालित होती है।

आजकल 'समाधि' शब्द का प्रयोग मरण अर्थ में रूढ़ होने लग गया है, 'उनकी समाधि हो गई' को ऐसा समझा जाता है कि उनका मरण हो गया; जबकि सल्लेखना पहले ही ली जाती है, यदि जिनागम में समाधि शब्द का अर्थ खोजा जाए तो उसका वही अर्थ मिलेगा, जो अर्थ सल्लेखना का है कि शांत परिणाम का नाम समाधि है, मौत का नहीं। बोलचाल की भाषा में लोग ऐसा प्रयोग करते हैं कि ये इसकी 'समाधि' है, यह इसका 'समाधि-स्थल' है आदि।

कषाय सल्लेखना के कृश करने वाले व्यापार में, व्यापार अर्थात् किसी चीज में जुट जाना, लगे रहना, बारंबार लगे रहना। हमारी बुद्धि जिन वचनों में लगती है वह हमारा व्यापार है, कषायों के कृश करने में, काय सल्लेखना के कृश करने में प्रवर्तमान पुरुष को रागादि भावों के

अभाव में आत्मबल नहीं है '**रागादि अंतरेण आत्मघात: नास्ति**', ऐसे व्यक्ति को रागादि भावों के अभाव में आत्महत्या नहीं है, अर्थात् आत्मघात उसके होता है, जिसके रागादि होते हैं। इसमें काय की अपेक्षा कषायों को कृश किया जाना प्रमुख है; क्योंकि काय का कृशपना तो दीन, हीन, दरिद्री, कमजोर व्यक्ति के पाप के उदय में देखा जाता है। भिखारी दीन, हीन व्यक्ति भी माँग कर खाता है, शरीर कृश है; लेकिन कषाय सारी विद्यमान है, असली सल्लेखना कषायों के कृश करने का नाम है, लोग कषाय सल्लेखना की बात तो करते ही नहीं बस काय सल्लेखना पर लगे रहते हैं।

'सल्लेखना' और 'संथारा' दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। संथारा शब्द का प्रयोग मुख्यरूप से श्वेतांबर परंपरा में प्राप्त है जबकि सल्लेखना शब्द का प्रयोग दिगंबर परंपरा में है। दोनों जगह दोनों शब्दों के प्रयोग भी मिल जाते हैं। रागादि भावों के अभाव में आत्मघात नहीं है, कोई भी व्यक्ति यदि कषाय नहीं करता है तब आत्महत्या नहीं कर सकता।

मोक्षमार्ग प्रकाशक के पृष्ठ 53 पर लिखा है – 'तथा अन्य का बुरा न हो तो अपने अंतरंग में आप ही बहुत संतापवान होता है और अपने ही अंगों का घात करता है तथा विषाद से मर जाता है – ऐसी अवस्था क्रोध होने पर होती है।'

क्रोध तथा मान सहा नहीं जाता, लोभ तथा माया बर्दाश्त नहीं होता तथा यह जीव आत्महत्या करके भी सुखी होना चाहता है। व्यक्ति ने आत्महत्या इसलिए की क्योंकि उसे पीड़ा बर्दाश्त नहीं हो रही थी।

क्रोध की पीड़ा सही नहीं जाती, मान सहा नहीं जाता, माया कब प्रकट हो जाए? लोभ की पूर्ति नहीं हो पा रही है, क्या करें? इसलिए आत्महत्या करके सुखी होना चाहता है, कषाय बर्दाश्त नहीं होती है।

पैसे चुकाए नहीं जाते हैं, तो सोचता है क्या करूँ? अभी माँगने के लिए आएँगे, तो पाँच मंजिल से कूद जाता हूँ। कषायों में आकर सोचता

है कि पत्नी बच्चों को जहर देकर मार देता हूँ तो इस जिंदगी से पीछा छूट जाएगा। अरे भाई! सुखी होने का उपाय आत्म-आराधना है, आत्महत्या नहीं। यदि मरण समय ही आ जाए तो क्या करेगा? कषाय कृश के व्यापार में प्रवर्तमान पुरुष के रागादि भाव ही नहीं है, इसलिए उसके आत्महत्या नहीं है।

जब मरण अवश्यंभावी हो अर्थात् कोई व्यक्ति दुनिया में अमर होकर तो आया नहीं है, कषायों का त्याग करते हुए राग-द्वेष बिना ही जो प्राण त्याग करने वाला मनुष्य है, तो उसकी आत्महत्या नहीं हो सकती, राग-द्वेष से जिसने आत्महत्या कर ली, जहर खा लिया, अपनी नस काट ली, गले में रस्सी बाँधकर पंखे पर लटक गया है, तब तो आत्महत्या है, यहाँ तो उसकी भावना यह करने की है ही नहीं, तब उसे आत्महत्या कैसे कहा जाए।

यहाँ कोई कहेगा कि संन्यास में तो आत्मघात का दोष आता है?

सल्लेखना करने वाला मनुष्य जिस समय अपने मरण को अवश्यंभावी जानता है, सल्लेखना की विधि बतलाती है कि किस तरह से छोड़ना है, उसी क्रम से छोड़ता है।

तब संन्यास अंगीकार करके कषाय को घटाता है और रागादि को मिटाता है, इसलिए आत्महत्या का दोष नहीं है, राग और कषाय को मिटाया और विभाव नहीं रहा तब आत्मघात का दोष कैसे लगेगा? यह किसी से परेशान नहीं है, आत्महत्या किसी परेशानी में की जाती है, दुःखी होकर की जाती है और सल्लेखना प्रसन्नचित्त होकर की जाती है, दोनों में अंतर है।

एक में दुःख है, कषाय है और दूसरे में प्रसन्नता है, निःकषाय है। एक में शरीर जानबूझकर छोड़ रहा है और दूसरे में शरीर अपने आप छूट रहा है। एक में कषाय बढ़ रही है और दूसरे में कषाय मिटाने का प्रयोजन है।

आत्महत्यारा सोचता तो यही है कि मैं सुखी हो जाऊँगा, अब झंझटों से पीछा छूट जाएगा, अब मुझे पैसे नहीं चुकाने पड़ेंगे, चुकाने वाले चुकाते रहेंगे। उसकी सोच चार्वाकमती जैसी हो जाती है कि जब तक जीओ सुख से जिओ, उधार लेकर के भी घी पियो; इस देह के एक बार चले जाने पर पुनः आगमन कहाँ होता है? अर्थात् नहीं होता।

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

इसमें आत्मघात का दोष नहीं है, क्योंकि रागादि को, क्रोध को, गुस्से को जीतना है, घमंड को, माया को जीत लिया है, अब यहाँ सहजता से जीवन व्यतीत करने की बात हो रही है, कितना भी प्रयत्न करें मौत तो जब आवेगी तब आएगी ही।

आप अपने आयुकर्म को कम नहीं कर सकते; लेकिन आयु के लिए आहार आदि जो योग्य निमित्त बताए हैं, उन्हें हटा दो। कोई कहे कि मैं आयुकर्म को नष्ट नहीं कर सकता, बस नस काट लेता हूँ, तो मर जाएगा। आयुकर्म का इन सब बातों के साथ में संबंध है, आयु कर्म का प्रसंग समाधि से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए – जैसे हाट के व्यापारी के घर में आग लग जाए और ऐसी आग लगे कि वह बुझाने से ना बुझे, तो प्रयत्न तो यही रहेगा कि यह आग बुझ जाए, लेकिन यदि ऐसी स्थिति आ जाए कि आग बुझेगी नहीं, तब क्या करें? यदि आग बुझाने से ना बुझे तब जैसे अपना व्यापार ना बिगड़े – ऐसा प्रयत्न करता है। अपना व्यवहार, अपना काम-धाम नहीं बिगाड़ना चाहिए। घर जैसा जितना जल गया तो जल गया, जितना बुझ गया सो बुझ गया। यदि अपना काम, दुकान या व्यापार बराबर चलता रहा तब मकान तो पुनः बन जाएगा – ऐसे संभालने का प्रयत्न करता है। वैसे ही यदि धर्मात्मा शरीर में बीमारी हो जाए तो उसे निर्दोष रीति से मिटाता है। प्रासुक औषधि लेता है, चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान है तथा यदि मुनि दशा है तब

श्रावकजन आहार के साथ में यथोचित भूमिका अनुसार औषधि प्रदान करते हैं। यदि रोग मिटता ना जाने तो जैसे अपना धर्म ना बिगड़े वैसे संन्यास धारण करता है। यदि आपने अपना जीवन यहाँ पूरा कर लिया पश्चात् नरक में चला गया, खोटी गतियों में चला गया, फिर क्या होगा और यदि भवनत्रिक में न जाकर वैमानिक में भी चला गया तब भी संयम का अवसर नहीं है।

स्वर्ग–नरक पशु गति में नाहीं, आलस–हरण करण सुख ठाँहीं।

– दशलक्षण पूजन (उत्तम संयम धर्म)

स्वर्ग और नरक में तो अवसर ही नहीं है, तिर्यंच गति में उपचार से पहली दर्शन प्रतिमा कह दी है। इस मनुष्य जीवन में पंचम गुणस्थान, छठवाँ–सातवाँ गुणस्थान प्राप्त करने का अवसर है। देव गति में अधिकतम चौथे गुणस्थान का आनंद है, जबकि यहाँ छठे–सातवें गुणस्थान का आनंद भी प्राप्त किया जा सकता है।

यदि किसी बीमारी, दुर्घटना, परेशानी आदि में आपने कभी मौत को बहुत नजदीक से गुजरते देखा है तब उस काल में ही संकल्प कर लेना चाहिए कि बचे हुए जीवन को आराधना और संयमपूर्वक बिताऊँगा, बची हुई जिंदगी को भोगों में बर्बाद नहीं करूँगा; क्योंकि मैंने दुनिया का हाल देख लिया है, एक सेकेण्ड नहीं लगता और जीवन पूरा हो जाता है, अभी न जाने कौन–सी गति में जाकर रूल रहा होता है; यह जो बोनस का जीवन हमें मिला है उस जीवन को तत्त्वज्ञान और आराधना के लिए समर्पित कर देना चाहिए। सबके साथ में कभी ना कभी ऐसे प्रसंग बन जाते हैं, अटैक आ जाता है, सही समय पर पहुँच गए और डॉक्टर ने ऑपरेशन कर दिया इसलिए बच गए। उसी समय संकल्प ले लेना चाहिए कि आज तो बच गए, अगली बार क्या होगा? प्रथमानुयोग में ऐसी कई कहानियाँ मिल जाएँगी, कि यदि बच गए तब तो मुनि दीक्षा धारण कर लेंगे।

अब विषयों में ना उलझेंगे, निजानंद पान करेंगे।
प्रभु भोगों में ना ही फँसेंगे, निजानंद पान करेंगे।।

कैंसर हो गया था, डॉक्टर ने जवाब दे दिया था और बचकर के आ गए। किडनी फेल हो गई थी और मौत के मुँह से निकलकर के आ गए। अब क्या दोबारा वही राग-रंग वही द्वंद-फंद में ही उलझना है, अब उनमें नहीं उलझना है, अब तो सल्लेखना-समाधि और शांत परिणाम की ही भावना भाना है।

मैं मौत चाहता नहीं हूँ, पर आ जाए तो क्या करें? जैसे बचें वैसे बचाने का प्रयत्न करता है। व्यापार न बिगड़े वैसा प्रयत्न करता है। वैसे किसी धर्मात्मा के शरीर में रोगादिक हो जाने पर आप कह सकते हो कि जब क्रमबद्धपर्याय या कर्म उदय पर भरोसा है फिर डॉक्टर के पास क्यों जा रहे हो? इसलिए जा रहे हैं कि यदि देह बचेगी तो आराधना में लगेगी और मरणकर दूसरी जगह जाने पर पता नहीं यह अवसर मिलेगा कि नहीं मिलेगा। दूसरी जगह की कुछ भी गारंटी नहीं है, वहाँ तत्त्वज्ञान मिलेगा - इस बात की भी गारंटी नहीं है। धर्मात्मा-साधर्मियों की गारंटी नहीं है, पुण्य उदय हो तो मिल भी सकता है, रोग न मिटने पर जैसे अपना धर्म न बिगड़े वैसा संन्यास धारण करना चाहिए। धर्म शांत परिणाम का नाम है, वह नहीं बिगड़ना चाहिए। उसकी ऐसी इच्छा नहीं है कि जबरदस्ती से मरण करूँ। मैं तो मर जाना चाहता हूँ - ऐसी इच्छा भी नहीं है; अपितु उसका उपाय ऐसा है कि बलात् रूप से मरण होने ही लगे, तब मेरे परिणाम शुद्ध रहें और सांसारिक विषय-भोगों की रुचि न रहे। उसके मरण में यदि राग-द्वेष हो तब आत्मघात होता है, जैसे कहें कि मेरी इतनी जिम्मेदारी है अभी तो पोते का मुँह देखना है, इसलिए मरना नहीं चाहता और सोचे कि मैं मर जाऊँगा तो इससे सुख-शांति प्राप्त हो जाएगी, तब उसे बर्दाशत नहीं होती, वही रोज का झगड़ा, वही तू-तू मैं-मैं, अब तुम खुश रहना, मैं तो आत्महत्या करके

मर रहा हूँ, इसमें भी राग–द्वेष बैठा हुआ है। खींझ करके कहता है कि निकाल दो मुझे घर से, मार दो मुझे – ऐसे वचन निकलते हैं; क्योंकि राग–द्वेष विद्यमान है। शरीर से यदि ममत्व टूट गया है, तब यह तन रहे अथवा न रहे, क्या फर्क पड़ता है?

तन से जिसका ऐक्य नहीं हो सुत–तिय–मित्रों से कैसे?

– सामायिक पाठ (आचार्य अमितगति)

शरीर से यदि ममत्व टूट गया है, तब जाकर के सच्ची समाधि होती है, शरीर के प्रति अपनापन तोड़ा जाता है, मोह तोड़ा जाता है।

यदि उस व्यक्ति के मरण में राग–द्वेष हो तो आत्महत्या है; किंतु जो मनुष्य राग–द्वेष का त्याग कर रहा है, उसके आत्महत्या नहीं कही जा सकती है।

शरीर बस छूट जाने से शरीर से मुक्त नहीं होते; क्योंकि अभी तो कार्मण शरीर विद्यमान है, तेजस शरीर विद्यमान है, तीव्र कर्मों का आस्रव बंध विद्यमान है, घर मात्र बदल गया है, आत्मघात को तो महापाप कहा है और सल्लेखना को धर्म कहा है। आत्मघात के फल में नियम से अधोगति की प्राप्ति होती है और समाधि के फल में नियम से वैमानिक स्वर्ग में उत्पत्ति होती है।

प्रत्येक आत्मार्थी का यह लक्ष्य होता है कि मेरा मरण नहीं बिगड़ जाए, अंत समय न बिगड़ जाए, अंत समय तक हाथ–पैर चलते रहें, आराधना चलती रहे, धर्मध्यान होता रहे, सभी आराधकों के दिलो–दिमाग में यही बात आती है। संयमपूर्वक, साधनापूर्वक, समाधिपूर्वक देह छूटे – हमेशा यही भावना भाते हैं।

यह भावना प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में गूँजनी चाहिए, आत्मार्थियों के हृदय में तो यह भावना अवश्य होती है। यह समाधिमरण आत्महत्या नहीं है, भले ही शरीर को कृश करने के भाव चलते हों, भले ही देह छूटती हो।

समाधि नाम तो शांत परिणामों का है, समाधि नाम तो नि:कषाय भावों का है, इस पंक्ति में यह बता दिया कि टोडरमलजी का मरण समाधिपूर्वक हुआ था। टोडरमलजी का नि:कषाय भाव जगत में प्रसिद्ध है, राजा ने गलतफहमी में उन्हें हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया। लोगों ने टोडरमलजी से कहा कि राजा से माफी माँग लो कि गलती हो गई, पर टोडरमलजी शांत रहे। महावत हाथी को अंकुश मार रहा था कि पैर रख दे, उसने पैर तो उठाया पर टोडरमलजी के ऊपर रखा नहीं, लहूलुहान हो गया। टोडरमलजी ने आदेश दिया – **'अरे भाई! तू क्या करता है, तू अपना कर्तव्य निभा, आयु यदि पूरी होने का काल आ गया होगा तो बचाने में कोई समर्थ नहीं है। मैं वह हूँ, जो कभी मरने वाला नहीं हूँ, मैं अमूर्त प्रदेशों का पुंज चैतन्यतत्त्व आत्मतत्त्व हूँ। मैं वह ध्रुव तत्त्व हूँ, जिसे मारने वाला कोई नहीं है।'**

यहाँ लिखा सारा समाधि का प्रकरण टोडरमलजी के दिलो-दिमाग में घूम रहा था, समाधि के परिणाम घूम रहे थे, अचानक मृत्यु का समय आ गया तो परिणाम को शांत रखकर अन्न-जल का त्याग कर दिया, शांत परिणामों सहित अपने ज्ञान और आराधनापूर्वक जीवन पूरा करें – उसका नाम समाधि है।

जो व्यक्ति समाधि का विचार करते हुए मरण को प्राप्त हो गया, दुनिया कह रही है कि मरण बिगड़ गया। इसलिए गुमानीरामजी ने समाधिमरण का स्वरूप प्रकरण लिखा। टोडरमलजी के परिणाम शांत थे, उनके परिणामों में आकुलता नहीं थी, परिणाम में कषाय भाव नहीं था, समाधि का स्वरूप समझाने पर वह बिगड़ा हुआ वातावरण शांत हो गया होगा, अचानक भी मरण हो जाता है।

तत्काल अन्न-जलादि का त्याग करता हूँ, तन पर मौजूद वस्त्र मात्र ही मेरा परिग्रह है, बाकी समस्त परिग्रह का त्याग करता हूँ, अरे जब तन मात्र मेरे से भिन्न है, तब यह वस्त्र आदि मेरे कैसे हो सकते हैं?

– ऐसा चिंतन समाधिमरण करने वाले का चलता है।

आत्मस्वरूप के अवलंबन बिना परिणाम शान्त नहीं हो सकते। जो अपने को देहरूप मानेगा, उसे मरण की अनुभूति होगी ही नहीं, जिसने यह समझ लिया कि यह मेरा नहीं है, उसे कौन मारेगा? यह दुनिया वाले जो समझ रहे हैं कि मैंने गोली चला दी तो तू मर गया, यह बहुत बड़ा भ्रम है। मैं वह तत्त्व हूँ जो कभी मरता नहीं हूँ, जब आत्मा की खबर होती है, तब समाधिमरण होता है। जब ज्ञान ज्ञान में समा जाता है, मैं क्या देखूँ, देखने लायक है क्या, इस दुनिया में कुछ देखने लायक नहीं है, कुछ अपनाने लायक नहीं है, यह मृत्यु तो मेरी उपकारी है, जो इस जीर्ण–शीर्ण देह से मुझे मुक्ति दिला रही है। यह मृत्यु मेरी सखा है, मित्र है, संबंधी है – ऐसा ज्ञानियों का विचार होता है। दो बातें हैं या तो निर्वाण हो जाए या मृत्यु।

निर्वाण इस पंचम काल में होता नहीं है और मृत्यु अनिवार्य है। कोई अमर होकर तो आया नहीं है, सारी बात इसकी है कि आप उस मृत्यु को कैसे स्वीकार करते हैं, आप उसे यदि शांत भाव से ग्रहण करते हैं तो आपका मरण समाधिमरण कहलायेगा और मैं मरना नहीं चाहता, मुझे दवाई दो, ऑक्सीजन दो, आत्मा को भूलकर यदि देह ही याद आती है, तब मरण बिगड़ गया, फिर समाधिमरण नहीं है।

समाधिमरण की भावना भाने वाले व्यक्ति को आत्मा का स्वरूप सही समझना चाहिए, अपने स्वरूप को समझने की भावना भानी चाहिए उसे कोशिश करनी चाहिए कि 'मैं कौन हूँ, मेरा क्या स्वरूप है, मेरे जो भाव हो रहे हैं; उनका फल क्या होगा?' अपने में लीन हो जाने पर यह व्यक्ति अमर हो जाता है, उपयोग उपयोग में लीन हो गया तो अमर हो गया।

समुद्र से निकली बूँद यदि समुद्र में मिल गई तब अमर हो गई। ज्ञान यदि ज्ञायक में मिल गया तब अमर हो गया।

अनंत बार बिना समझे मरण किया है, अब वस्तु का स्वरूप समझ लिया, अब अज्ञान अवस्था में मरण नहीं करेंगे।

तन कारज मिथ्यात दिया तज, क्यों कर देह धरेंगे।
अब हम अमर भये न मरेंगे।।

शरीर और आत्मा का वियोग होना है तो हो जाएगा, आयु पूरी होनी है सो पूरी हो जाएगी, अमर होकर तो कोई नहीं आया है। मेरा मरण हो जाएगा इस बात से मैं दुःखी होता हूँ। आज मुझे पता चल गया कि मेरा मरण होता ही नहीं है, अब घबराहट का क्या काम है, चेहरे पर शांति और सहजता होती है।

तिर्यंच गति के जीव भी उस सहजता और शांति को समझ लेते हैं, उस हाथी ने समझ लिया कि यह तो कोई दिव्य पुरुष हैं, महापुरुष हैं, इनको तो मैं मस्तक झुकाता हूँ, इनके ऊपर पैर कैसे रख सकता हूँ, संज्ञी पंच इंद्रिय होते हैं। टोडरमलजी उपदेश दे रहे थे, टोडरमलजी ने तो जिंदगी भर उपदेश ही दिया, अब मनुष्य ना सही, जाते-जाते हाथी को ही उपदेश दे दिया।

हे गजराज! क्या शब्द होंगे? भीड़ लगी है, राजा खड़ा है, जनता खड़ी हुई है, महावत अंकुश चुभोकर कोशिश कर रहा है, मैं मर जाऊँगा, इस बात से डरता है। कोई मुझे मार नहीं सकता, इस बात से मैं निडर हो गया। डरा हुआ तो स्वयं ही मरा हुआ है, जो डर गया तो मर गया, डर ही तो मरण है। व्यक्ति मौत से कम मरता है, डर से ज्यादा मरता है, मैं मर नहीं जाऊँ, पैर नहीं फिसल जाए, कोरोना नहीं हो जाए, बुखार नहीं हो जाए, टाइफाइड नहीं हो जाए आदि।

जो हो गया सो हो गया, मरण एक समय का है, तू मरण का विकल्प करके कभी नहीं मरता, इस बात की खबर जिन जीवों को हो जाती है, वे निश्चिन्त रहते हैं, शांत रहते हैं, जीवन पूरा हो जाए, नई गति में पहुँच जाएँगे, नए भव में पहुँच जाएँगे, नई अवस्था होगी, जो

होगी सो होगी, हमें तो वह भी नहीं चाहिए और यह भी नहीं चाहिए। करने–कराने की भावना यदि आ जाए तो समाधि बिगड़ गई।

जी लिए तो जी लिए, मर गए तो मर गए; इसका नाम समाधि है, मोह–ममत्व टूटा, शरीर के प्रति अपनापन टूटा और सल्लेखना हो गई।

जीवन पूरा हो इससे पहले शरीर के प्रति अपनापन टूट जाए, आयु पूरी होने के पहले शरीर से अपनापन टूट जाए, उस मरण का नाम समाधिमरण है। अपनापन ना टूटे उसका नाम मरण है, शरीर के प्रति अपनापन टूटने के कारण समाधिमरण में समाधि शब्द आया है और अपनापन नहीं टूटा है तो मरण है। शरीर दोनों में ही छूटता है – एक में अटैचमेंट है और दूसरे में डिटैचमेंट है। मरण में शरीर से अटैचमेंट है और समाधिमरण में उससे डिटैचमेंट है।

संवत् 1821 में जब टोडरमलजी ने इंद्रध्वज विधान कराया था, उस समय मोती डूंगरी में 10,000 लोग एकत्रित हुए थे। 64 वर्ग गज का पाण्डाल लगा था अर्थात् 8 गज लंबा 8 गज चौड़ा। वहाँ पूरे तीन लोक की रचना खड़ी की थी। दुनियाभर से लोग वहाँ सम्मिलित होने आए थे, फिर भी स्थिति प्रतिकूल हो गई। साल दो साल में मौत के घाट उतार दिया। उस समय सारे जयपुर का बहुत बुरा हाल हो गया था, राजा को हाथ जोड़कर माँफी माँगनी पड़ी थी। राजा को पश्चात्ताप हुआ और जैन समाज के उत्थान के लिए बहुत काम किए। अनेक मंदिर बनवाए इत्यादि।

कषायों से मरा आत्मघाती है। नि:कषाय होकर के मरा वह व्यक्ति आत्मघाती नहीं है।

यों ही कषायाविष्टः कुम्भकजलधूमकेतुविषशस्त्रैः।
व्यपरोपयति प्राणान् तस्य स्यान्नित्यमात्मवधः।।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा 178

अर्थ – जो जीव क्रोधादि कषाय संयुक्त होकर श्वास निरोध

अर्थात् फाँसी लगाकर, जल में डूबकर, अग्नि में जलकर, विष भक्षण कर या शस्त्रादि के द्वारा अपने प्राणों का वियोग करता है, उसको सदाकाल आत्मघात का दोष लगता है।

जो जीव क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों की तीव्रता से अथवा इष्ट वियोगी के खेद से या आगामी निदान के वश होकर अपने प्राणों का घात करता है, उसे ही आत्महत्या का दोष लगता है। इसप्रकार संन्यास में आत्महत्या नहीं है; क्योंकि वहाँ कषाय नहीं है।

प्रत्येक आत्मार्थी समाधिमरण की भावना भाता है। शास्त्रों में कुछ विशेष परिस्थितियाँ कहीं हैं, जिनमें सल्लेखना होनी चाहिए। दोनों ही प्रकार की सल्लेखना के लिए बात है। ज्ञानी जीव सल्लेखना लेते हैं, वे ज्ञानी गृहस्थ भी हो सकते हैं, मुनिराज भी हो सकते हैं।

समाधिमरण अर्थात् सल्लेखना विधि, यह विधि मुनि और गृहस्थ दोनों के लिए है, ऐसा नहीं है कि सल्लेखना गृहस्थों को लेनी चाहिए या मुनिराजों को लेनी चाहिए। यह प्रकरण दोनों के लिए ही है; लेकिन बात व्रतियों से शुरू होगी इसलिए पंचम गुणस्थानवर्ती तक की बात है।

सल्लेखना अथवा संन्यासमरण एक ही अर्थ है। अतः 12 व्रत के बाद सल्लेखना का वर्णन किया है, दोनों ही अपना अंत समय नजदीक आ जाने पर बिल्कुल निवृत्त होकर 'देह छूटने वाली है' इस भावनापूर्वक अपने बचे हुए समय को विशेष आराधना में लगाते हैं, इस तरह से उनका समाधिमरण या सल्लेखना हो जाता है।

12 व्रत वाला सल्लेखना ले रहा है इसका मतलब उसका जीवन पहले ही संयमित एवं मर्यादित था, बड़े-बड़े पाप तो उसके जीवन में पहले ही छूट चुके थे।

अचानक समाधिमरण नहीं होता; लेकिन आजकल ऐसा होने लगा है कि जीवनभर आराधना नहीं की, धर्म नहीं किया, स्वाध्याय

नहीं किया और अंतिम समय में डॉक्टर ने जब जवाब दे दिया तब कहते हैं कि पंडितजी आ जाओ, इनका समाधिमरण करा दो। जीवन में कुछ सुना नहीं, कुछ पढ़ा नहीं, अब जब डॉक्टर ने जवाब दे दिया तो पंडितजी को बुलाया जाता है। जब दवाइयों से काम नहीं चलता तब दुआओं से काम लिया जाता है। हम आपसे कहते हैं कि जब डॉक्टर को दिखाने की नौबत नहीं आई थी, क्या तब धर्मध्यान नहीं कर सकते थे? तब आराधना-स्वाध्याय में अपना जीवन नहीं बिता सकते थे? अब अंत समय में कोशिश करते हैं ताकि भव सुधर जाए।

हमें इस बात से भी मतलब नहीं है कि कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाया तो वह देवगति में देव हुआ, उसका भव सुधर गया; अपितु इस बात से मतलब है कि उस यक्ष ने वहाँ से आकर जीवन्धर स्वामी को तीन वरदान दिए। कहीं हमारे साथ भी ऐसी ही घटना घट जाए। हम णमोकार मंत्र सुनाएँगे तो हमारे साथ भी ऐसा हो जाएगा। नाग-नागिन को णमोकार मंत्र सुनाया और उनका भला हो गया। हम भी णमोकार मंत्र सुनाएँगे और हमारा भी भला हो जाए। ऐसा कौन चाहता है कि कुत्ते, भेड़, बकरी का भला हो जाए। हम यही चाहते हैं कि कहीं यह देव बन गया तो हमारा भी भला हो जाएगा।

यह देव हमारा दोस्त हो जाएगा, हमारा सहयोग करने आ जाएगा। किसको-किसका भव सुधारने से मतलब है और कौन किसका भव सुधार देगा, जिसने स्वयं अपना भव जीवनभर नहीं सुधारा उसका अंतिम समय में कैसे सुधर जाएगा। जीवनभर जिसने आराधना, तत्त्व की साधना न की हो तब कौन आकर उसका भला करने में समर्थ हो सकता है, अंत समय में कुछ भी होने वाला नहीं है।

सल्लेखना व समाधि का अधिकारी वह है, जिसने जीवनभर व्रतों का पालन किया हो। गुटका, पान, शराब आदि खाता-पीता था और अंतिम समय में वस्त्र उतार दिए, ऐसे थोड़े ही चलेगा। सल्लेखना लेने

के अधिकारी हमारे सभी आत्मार्थी लोग हैं, जो व्रत, संयम, ध्यान, तपस्या, आराधना, साधना में निरंतर लगे हुए हैं, अंत उनका सुधरेगा, जिनका जीवन सुधरा होगा। समाधिमरण मरण सुधारने का नाम नहीं है, यह जीवन सुधारने का नाम है।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने लिखा है –

मरण तो एक समय का है मरण का कैसे हो उद्धार।

मरण के 5 मिनट पहले क्या सुधरेगा? 10 दिन पहले भी कितना सुधर पायेगा, कान और जबान काम नहीं करती और पंडितजी से बोल दिया कि कुछ धर्म की बातें कान में डाल जाया करो, कैसे काम चलेगा? इसलिए उत्कृष्ट सल्लेखना की अवधि 12 वर्ष कही है। इतने समय तक व्रत–त्यागपूर्वक जीवन बीत रहा हो तो सल्लेखना होती है। अंत में यदि 5 साल तक आराधना न हो तो भव सुधर गया, इस धोखे में मत रहना।

'अंत भला तो सब भला' यह बात तो सही है, पर वह भला कैसे होगा? अंतिम समय कैसे बिताया है यह मायने रखता है। यदि आप नियमित रहकर के स्वाध्याय कर रहे हैं, तत्त्व की गहराई में जाने का प्रयत्न कर रहे हैं, आत्म–कल्याण के पथ पर लगे हुए हैं और अंत तक लगे रहेंगे तब मरण किसी भी परिस्थिति में हो, उसे समाधिमरण कहेंगे।

जिसका जीवन समाधि में बीतता है उसका मरण समाधि में होता है। यह त्याग की महिमा है; लेकिन यदि त्याग करने वाले को ही पता ना हो कि उसने त्याग किया है फिर कैसे काम चलेगा। सल्लेखना और संन्यासमरण का एक ही अर्थ है। सल्लेखना और समाधिमरण की चर्चा 12 व्रतों के बाद की गई है, इसका मतलब है कि सल्लेखना 12 व्रतों के बाद होती है अणुव्रत जिसने नहीं ले रखे हैं, इसका मतलब है कि वह अखंड पाप में डूबा हुआ है। परिग्रह का त्याग नहीं किया है; अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण व्रत जिनके नहीं है; दिग् व्रत, देशव्रत, अनर्थदंडव्रत के पापों से जिसने निवृत्ति नहीं ली

है, वह कैसे समाधि मरण करेगा। अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसादान, दुःश्रुति – यह सब जिसके जीवन में चल रहे हैं, उसका समाधिमरण कैसे होगा।

जिनके चिंतन में अपध्यान चल रहा है, उसका समाधिमरण कैसे होगा? पापोपदेश वाला उल्टा-सीधा उपदेश देता है, सुनता रहता है, समाधिमरण कैसे होगा? प्रमादचर्या, हिंसादान, दुःश्रुति – ये सब अनर्थदण्ड हैं। इनके त्यागपूर्वक संयमी हो गया, उसके बाद सल्लेखना की बात आती है, इसलिए जितना हो सके उतना त्याग करें।

किसी भी चीज में खींचतान नहीं करें, घर में विवाद नहीं करें, आपस में झगड़ा नहीं करें; क्योंकि कषाय सल्लेखना भी तो कही है, सल्लेखना के कारण यदि घर में विवाद, तू-तू मैं-मैं आदि की स्थिति बन रही है तब सबसे पहले कषाय सल्लेखना का विचार करो कि मैं कितना सहज रह सकता हूँ, कितना शांत रह सकता हूँ, कितना क्रोध आदि विभाव भावों को मैं जीत सकता हूँ। सामायिक, प्रोषधोपवासव्रत, भोगोपभोग परिमाणव्रत, अतिथिसंविभागव्रत – ये सब जिसके जीवन में कूट-कूट कर भरे हों उसके बाद सल्लेखना का नंबर आता है।

इस सल्लेखना व्रत की उत्कृष्ट मर्यादा 12 वर्ष तक की है – ऐसा श्री वीरनन्दी आचार्य कृत यत्याचार नामक ग्रंथ में कहा है। 12 वर्ष के अंदर जीवन पूरा हो जाता है, कदाचित् आयु पूरी न होवे फिर वह अपने नियंत्रण में ही उसे बढ़ाएगा।

सल्लेखना और सामायिक दोनों में क्या अंतर है? दोनों एकसमान साम्यभाव रूप दिख रही हैं, सामायिक प्रतिदिन की जाती है, वह दैनिक आवश्यकता में सम्मिलित है, अष्टमी-चतुर्दशी को भी कर सकते हैं; लेकिन वह निरंतर चल रही है और जिसके जीवन में यह सामायिक चलती है, उसके जीवन में अंतिम समय में जो विशेषरूप से पालन करने की इच्छा होती है, वह सल्लेखना कहलाती है।

सल्लेखना अंत में की जाती है, अपने शरीर की स्थिति को देखकर जीवन का पता चल जाता है, जिसकी 70-75 वर्ष तक की आयु है तब शरीर की स्थिति ज्यादा तो रहने वाली नहीं है, मोटा-मोटा अंदाजा लग जाता है। यदि स्वस्थ है तब तो जीवन लंबा भी चल सकता है; लेकिन यदि बीमारियाँ भी साथ में हैं तब तो शीघ्र ही समाप्त होने वाला है। दवाइयों में जिनका जीवन चल रहा हो तो ज्यादा से ज्यादा 5-7 साल और जीवन खींच लेगा; लेकिन सल्लेखना में पूरी तरह से निवृत्ति में जीवन है, सामायिक के काल में गृहस्थ भी मुनिराजों जैसा हो जाता है; क्योंकि सामायिक के काल में वह गृहस्थ मुनिराजों के समान हो निवृत्त रहता है। जब तक शरीर किसी असाध्य रोग से अथवा वृद्ध अवस्था से असमर्थ न हो जाए।

दौलतरामजी छहढाला की छठवीं ढाल में लिखते हैं –

जबलों ना रोग जरा गहै, तबलों झटिति निज हित करौ।

जब तक रोग और बुढ़ापा आकर न घेर लेवे, तब तक आत्मार्थी बन्धुओं को अपने आत्मा के हित में लग जाना चाहिए। अपना कल्याण कर लेना चाहिए; क्योंकि कोई भरोसा नहीं है, बुढ़ापा भले ही पहले ना आवे, लेकिन बीमारियाँ तो आ सकती हैं।

सामायिक और सल्लेखना में कारण-कार्य संबंध है। 12 व्रतों के पश्चात् सल्लेखना कही है और 12 व्रतों में सामायिक सम्मिलित है, सामायिक होगी तो सच्ची सल्लेखना होगी। सामायिक चौथे गुणस्थान से लेकर भूमिका अनुसार सबमें होती है, सल्लेखना सबसे अंतिम समय में होती है, यदि सल्लेखना और सामायिक एक ही चीज होतीं तो बीच में 12 वर्ष का समय क्यों रखते? 12 वर्ष की मर्यादा कहकर यह बात स्पष्ट कर दी –

बारह व्रत के अतिचार, पन-पन न लगावै,
मरण-समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।

यों श्रावक-व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै,
तहाँ ते चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।।

– छहढाला, पाँचवीं ढाल – 15

अब हमने निवृत्ति ले ली है, अब हम उलझेंगे नहीं। जा हमारे परिचय में ऐसे बहुत से लोग हैं जो संपन्न हैं, स्वस्थ हैं और निवृत्ति ले चुके हैं। हमें उन प्रपंचों में नहीं फँसना है। आप एक दिनांक तो निश्चित कीजिए कि मैं इस तिथि के पश्चात् रिटायरमेंट ले लूँगा। हमारे रिटायरमेंट की डेड लाइन तो हो कि उसके बाद मैं काम नहीं करूँगा, भले ही कोई तिथि 5-10 साल के बाद की निश्चित करें; परन्तु निश्चित तो अवश्य करनी ही चाहिए। बच्चे संभालेंगे तो ठीक है, परिपक्व होंगे तो ठीक, नहीं होंगे तो निवृत्ति तो लेनी ही है। मैंने 20 साल पहले सोच लिया था कि मुझे 40 साल की उम्र के पहले छुट्टी चाहिए। हम कब तक उलझे रहेंगे, जीवन का कोई ठिकाना थोड़ी है। कभी तो निवृत्ति की भावना भाओ, कभी तो यह सोचे कि सबकुछ छोड़कर धर्मध्यान, आराधना में लगेंगे। यह तत्त्व की बात धर्म की बात में उपयोग लगाना कुछ अलग ही बात होती है, महिलाएँ भी रिटायमेंट ले सकती हैं, अपनी बहू को थोड़ा जिम्मेदार समझें; लेकिन समस्या यही है कि बहू पर भरोसा नहीं होता, चाबियाँ नहीं दी जातीं, रोक-टोक किए बिना पार नहीं पड़ती है।

मैं जब तक माथे पर जाकर बैठूँ नहीं, तब तक यह बहू काम करती नहीं है, तब आपको रिटायर कौन करेगा? आज तक क्रमबद्धपर्याय के चिंतन को छोड़कर दुनिया में कोई ऐसा बेटा नहीं हुआ जो अपने बाप को निश्चिंत कर सके। यह निश्चिंतता और भरोसा तो आपको होना चाहिए कि हमें यह काम करना है। उसके बाद का पूरा प्लान होना चाहिए - ऐसा नहीं कि सब कुछ छोड़कर फिर घर में बैठकर ताश-पत्ती खेल रहे हैं, यह नहीं कि टाइम पास नहीं हो रहा है

तो टीवी के चैनल बदल रहे हैं, उसका नाम सल्लेखना थोड़े ही होता है, यहाँ तो आराधना के लिए समय की बात चल रही है।

जब शरीर किसी असाध्य रोग से अथवा वृद्धावस्था से असमर्थ हो जाए और अब डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है, स्थिति ठीक नहीं है, बस पकड़ करके वॉशरूम तक चले जाते हैं, तब थोड़े ही धर्म कर पाओगे।

देव, मनुष्य आदि कृत कोई दुर्निवार उपसर्ग आज आन पड़े (यहाँ 'दुर्निवार' उपसर्ग शब्द लिया है। किसी के माध्यम से कोई संकट आ गया वह दुर्निवार नहीं होता) किसी के माध्यम से टाला न जा सके, जिससे छुटकारा न पाया जा सके। भद्रबाहु स्वामी के समय में जैसा अकाल पड़ा था, उस समय दिगंबर-श्वेतांबर बँटवारा हुआ, अकाल के समय एक-एक बूँद को व्यक्ति तरसता था, एक-एक बूँद को मोहताज हो जाता था, उसका नाम अकाल है। 2000 साल पहले जैसा 12 साल का अकाल पड़ा था, आज एक साल यदि पानी ना गिरे तो सरकार चिंतित हो जाती है कि इस वर्ष हम क्या करेंगे, इस वर्ष तो वर्षा हुई नहीं, दो-तीन साल तक एक बूँद भी बारिश ना हो तो कैसी स्थिति बन जाएगी ?

2-4 साल तक बारिश ना हो तो नहाना-धोना आदि सब खत्म और 12 वर्ष की कल्पना करो - क्या बनाएँगे क्या खाएँगे ? भूखे मरने के अलावा और कोई स्थिति नहीं है। कोई साधन, कोई व्यवस्था नहीं दिखाई दे रही है, इतना भयंकर अकाल - यह बात हो रही है, जहाँ जैसी स्थिति हो जाए वहाँ दुष्काल की बात नहीं कर रहे हैं, अकाल की बात हो रही है, महादुष्काल में भोजन आदि पदार्थ दुष्प्रभाव हो जाए, अभी तो क्या-क्या देखना बाकी है, हमें पता नहीं है। भविष्य में किसको पता है कि क्या होने वाला है अथवा धर्म का नाश करने वाला कोई विशेष कारण उपस्थित हो जाए, अभी जैसे एक साल से महामारी की स्थिति बनी हुई थी। सन् 2019 से चालू हो गई थी, तभी तो इसका नाम कोविड-19 पड़ा है। अचानक ऐसी स्थिति बन जाए कि सारे

मार्केट बंद हो जाएँ, राशन की पूर्ति बंद हो जाए, ऐसे समय में लोग भूखे मर रहे थे, धर्म नष्ट होता हुआ, जीवन पूरा होता हुआ दिखाई दे रहा था। जीवन का अंत समय जान लिया था, युद्ध चल रहा था, हजारों लोग प्रतिदिन मौत के घाट उतारे जा रहे थे।

ऐसी स्थिति बन जाती है, तब अपने शरीर को पके हुए पान के समान जानकर कि अब झड़ने का समय आ गया है अथवा तेल रहित दीपक के समान जानकर कि आयुकर्मरूपी तेल खत्म हो गया है, सही में विनाश के सम्मुख खड़ा हुआ जानकर संन्यास धारण करें।

यदि मरण में किसी प्रकार का सन्देह हो तो मर्यादापूर्वक ऐसी प्रतिज्ञा करें कि जो इस उपसर्ग में मेरी आयु पूर्ण हो गयी तो मेरे आहारादि का सर्वथा त्याग है और यदि कदाचित् जीवन शेष रहेगा तो आहारादि को ग्रहण करूँगा। यह संन्यास ग्रहण करने का क्रम है।

यह जो संन्यास होता है, यह तात्कालिक संन्यास होता है; क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि युद्ध-महामारी के समय संन्यास लिया और युद्ध-महामारी शांत हो गई, तब समय का अंत ही नहीं आया। सारे लोग ही मर रहे हैं और अवसर ऐसा पड़ गया कि बच गए तब क्या करें? यदि मरण में किसी प्रकार का संदेह हो तो मर्यादापूर्वक ऐसी प्रतिज्ञा करें। टोडरमलजी के साथ ऐसी स्थिति बन गई थी, उसको देखकर ऐसा लिख रहे हैं, क्या पता 20-25 साल जिऊँगा या पाँच सात दिन में मर जाऊँगा, उनके जीवन में संभावना लग रही है, इसलिए उन्होंने ऐसी व्यावहारिक बात की है।

अभी बड़नगर वाले साधर्मियों के साथ में जैसा माहौल बना, एक-एक करके कई लोग चले गए। अप्रैल में अब उनके परिवार वाले सोचते हैं कि हमारा भी पॉजिटिव आ गया अब हम भी मरने वाले हैं, हमने सल्लेखना ले ली, त्याग कर दिया। अब जीवन बच गया तब कभी भी त्याग करें तो इसी तरह से करें कि जब तक मेरी ऐसी स्थिति है तब

तक के लिए मेरा इसका त्याग है। अचानक होने वाले मरण को, कदलीघात मरण को, आयुकर्म के अपवर्तन से होने वाले मरण को अकाल मृत्यु कहकर के पुकारा गया है; लेकिन कोई व्यक्ति यह समझे कि वह भगवान के ज्ञान में नहीं झलक रहा था तो वह गड़बड़ वाली बात हो गई।

मुनिराज भी उपसर्गादिक में ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इस उपसर्ग में मेरी आयु पूर्ण हो गई तो मेरे आहारादिक का सर्वथा त्याग है। यह उपसर्ग संकट का काल आ रहा है, इसमें यदि जीवन पूरा हो जाए इसलिए वह यह भावना भा रहा है। अतएव उसने सब अन्न-जल का त्याग कर दिया। लोग सामने बंदूक ताने खड़े हैं, आतंकवादी हमला हो गया है और हमारे ही सामने मॉल में कई लोग मर गए, तब तुरंत मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि समाधि की भावना भाओ, जब तक संकट की घड़ी सामने दिखाई दे रही है, तब तक के लिए अन्न-जल का त्याग है। आतंकवादी ने बंदी बना लिया है। पता नहीं कब मारेगा। आज या कल छोड़ भी देगा, तब तक के लिए हम आहार-जल का त्याग करें।

जब तक आतंकवादी की गिरफ्त में हूँ तब तक अन्न-जल का त्याग है, जीवन पूरा हो, तो अन्न-जल के त्यागपूर्वक, कषायों के त्यागपूर्वक हो। अरे! कोई बात नहीं जब जीवन पूरा होने का समय आ गया है, तब कौन बचाने में समर्थ है। जीवन पूरा होना होगा तो आज ही हो जाएगा और जीवन बचना होगा तो कितने ही आतंकवादी आ जाएँ कोई मार नहीं पाएगा। पूरा होने का यदि काल आ गया तब स्वर्ग से देवी-देवता आ जाएँ तो बचा नहीं पाएँगे और यदि बचने की स्थिति बन गई तब कितने ही डाकू-लुटेरे-आतंकवादी आ जाएँ मारने में समर्थ नहीं हो पाएँगे। जब आपके दिल और दिमाग पर क्षणभर के लिए भी ऐसा विचार आ जाए कि अब जिंदगी लंबी नहीं है तो उसी समय उस व्यक्ति को सल्लेखना अंगीकार कर लेनी चाहिए। हृदय में यह बात

आ गई अर्थात् अब जिंदगी लंबी नहीं है, यह बात तो वृद्धावस्था पर लागू होगी; लेकिन अचानक भी ऐसी स्थिति बन जाती है, लगता है कि शायद प्राण निकल जाएँगे, लगता है शायद इस बाढ़ से हम बच नहीं पाएँगे, इस आतंक के शिकार हम भी हो जाएँगे, तो ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति को समाधिमरण ले लेना चाहिए।

प्रश्न – यदि बाद में परिस्थितियाँ बदल जाएँ तो क्या करें?

उत्तर – जब आप प्रतिज्ञा संयम ले रहे हैं तब इतनी सावधानी-पूर्वक लेवें कि इस परिस्थिति में मेरे सब चीजों का त्याग है। जब आप अस्पताल में पहुँच गए हैं तब भी आप इस तरह का त्याग कर सकते हैं कि मैं किसी के प्रति कोई ममत्व नहीं रखूँगा, ममत्व नहीं है अर्थात् फिर आप चिंता नहीं करेंगे कि मेरा बेटा उसको देख लेना, उसको इतना देना, वहाँ की जमीन है उसके पैसे हैं, वहाँ खरीद लेना, वहाँ बेच देना – यह सब काम यदि आप कर रहे हैं तब आप सल्लेखना के अंदर नहीं हैं।

सल्लेखना का मतलब है कि उस दौरान हमने सबसे नाता तोड़ दिया। अब कोई जिए या मरे, अब हमें कोई विकल्प नहीं है। सल्लेखना धारण करने वाले के ऐसे प्राण नहीं कि एक बार मेरा बेटा आ जाए, एक बार उसका मुँह देख लूँ, जब डॉक्टर जवाब दे देते हैं तब बिस्तर पर पड़े-पड़े लोग ऐसी माँग करते रहते हैं।

अरे भाई क्यों देखना चाहते हो? यदि समाधिमरण ले रहे हो इसका मतलब है अब अनंत काल के लिए साथ छूट गया और साथ नहीं है तो किसी को संभालना नहीं है, किसी की चिंता भी नहीं करनी है, अब अपने आप की चिंता कर लो, जीवन भर अपनी चिंता नहीं की, परिवार की ही तो चिंता करते रहे। अब भी यदि उसकी चिंता करोगे तो क्या होगा? होटल के जिस रूम को खाली करना होता है, समझदार व्यक्ति उसकी चिंता नहीं करता।

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल बाहर भावना में लिखते हैं –

जिन्दगी इक पल कभी कोई बढ़ा नहीं पायगा।
रस रसायन सुत सुभट कोई बचा नहीं पायगा।।
सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में।
जीवन–मरण अशरण–शरण कोई नहीं संसार में।।

ज्ञानी ऐसा विचार, चिंतन करता है यदि कदाचित् जीवन शेष रहेगा तो आहार आदि को ग्रहण करूँगा। यह संन्यास ग्रहण करने का क्रम है। यह तात्कालिक संन्यास और फिर क्रम से संन्यास, तात्कालिक संन्यास से यदि कदाचित् हम बच गए तो कम–से–कम इतनी चीज का त्याग तो हम हमेशा निभाएँगे।

यदि आप अपने जीवन को बोनस में जी रहे हैं तब आराधना में बिता दो; यदि जीवन बच गया तब कम–से–कम चार घण्टे आराधना में बिताऊँगा। ऐसे नियम ले लें कि इन–इन चीजों के त्यागपूर्वक समय बिताऊँगा। जीवन का क्या भरोसा है कि कब पूरा हो जाए।

सल्लेखना वह पुल है जो धर्म को इस भव से अगले भव में यात्रा करने की योग्यता प्रदान करता है, साधन प्रदान करता है, धर्म को इस जन्म से अगले जन्म में ले जाने के लिए कौन–सा साधन होगा? कौन–सी ट्रेन होगी, कौन–सी फ्लाइट होगी, वह साधन सल्लेखना है। यह मलिन, दुष्ट शरीर मुझे धर्म साधन में बाधा उत्पन्न करता है, मुझे इस शरीर का साथ नहीं चाहिए। यह शरीर छूटता है तो छूट जाए; लेकिन धर्म साधन नहीं छूटना चाहिए। जब शरीर की स्थिति पके हुए पान की तरह हो जाए, जब हम ऐसा महसूस कर रहे हों कि दीपक में तेल खत्म हो गया है, तब विनाश को सम्मुख जानकर; क्योंकि दीपक में तेल खत्म हो गया, तब दीपक बुझ जाने वाला है, वृक्ष के ऊपर लगा हुआ पत्ता यदि सूख गया है, पीला पड़ गया है; इसका मतलब है कि उसके सूखने का समय आ गया है, अब उसके झड़ने का समय आ गया है।

चादर पड़ी है, बिस्तर पड़े हैं, गंदगी पड़ी है, जो होगा सो होगा, हम तो चले अब दोबारा इस कमरे में कौन आएगा? जिस जगह हमें आना नहीं है, उस जगह के प्रति हमारी सोच ऐसी ही होनी चाहिए। घर से निकलते समय घर को इतना नहीं फैलाते जितना धर्मशाला का रूम फैला रहता है। चादर उड़ा करके देखता है, गद्दा फेंकता है, कोई चीज रह ना जाए, अतः सामान उठाकर देखता है। कचरा पड़ा हो तो ढोल देता है, हमें थोड़े ही वापस यहाँ आना है - धर्मशाला में रहने वाला ऐसा सोचता है।

जिस जगह हमें कुछ समय गुजारना है, यदि सफाई वाला सही समय पर ना आए तब आप तीन बार कॉल करके उसे बुलाते हैं कि आज सफाई नहीं हुई, उसको खाली करते समय बेडशीट से जूते साफ करके चले जाते हैं। दूध-चाय ढुल जाए तो परवाह नहीं है, गंदगी हो रही है तो परवाह नहीं है; क्योंकि हमें वहाँ से जाना है। वहाँ तो बड़े होशियार बनते हो और जब देह को छोड़कर के, संपत्ति को छोड़कर के, परिवार को छोड़कर के जाने का समय आ गया है तब तुम इसकी सँभाल में लगे हुए हो।

सल्लेखना की बात कर रहे हैं, अब यह पीछे की चीज विचार करने योग्य नहीं है, अब परिवार, संपत्ति, घर, पैसे का क्या होगा? सोचने योग्य नहीं है। पीछे से यदि तुम्हें बुलाए भी तो भी तुम आना पसंद ना करो, अंतिम समय में ऐसे परिणाम होने चाहिए।

क्या आप धर्मशाला के रूम में निकलते समय उसकी अपने हाथों से साफ-सफाई करते हो, नहीं करते हो न। जिनवाणी कह रही है कि सारे विकल्प छोड़ दो, बस हमें अपनी आदत का, अपने अभ्यास का ही अनुसरण करना है।

छोटे-छोटे से बच्चे बचपन से तू-तू, मैं-मैं करते रहते हैं, यह मेरा है, यह मेरा नहीं है - उसे अपना-पराया करना तो आता है, भेद-

विज्ञान के लिए बस यही काम करना है और कुछ नहीं करना है। जिनवाणी माँ यहाँ सिखा रही है, यदि सीख ले तो जीवन निहाल हो जाए, जिनवाणी माँ जो सिखा रही है, बच्चे यदि उसे गंभीरता से सीख लें तो जिंदगी भर सुख-शांति से रहेंगे, यदि कमजोरी रह गई तो गड़बड़ हो जाएगी।

दादा प्रशिक्षण शिविर में उदाहरण देते थे - लौकिक महाभारत में धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी, जो दुर्योधन की माँ थी, उसने अपनी आँखों में पट्टी बाँध ली, उसने अपने बच्चों को नहीं देखा था। माँ ने दुर्योधन को बुलाया कि उसकी दृष्टि में दुर्योधन के शरीर का जो भी अंग पड़ेगा वह सारा अंग वज्र का हो जाएगा। श्रीकृष्ण इस बात को समझ गए और रास्ते में जाते हुए दुर्योधन से बोले कि तुम अपनी कमर पर कपड़ा लपेट कर जाओ, ऐसे नग्न जाओगे क्या? 'माँ ने ऐसा ही कहा है' - दुर्योधन बोले। श्रीकृष्ण ने कहा - 'वह बचपन की बात अलग होती है, अब तुम बड़े हो गए हो, ऐसे नहीं जाया जाता।' फिर दुर्योधन कपड़ा लपेटकर गए और कपड़े से ढके हुए भाग को छोड़कर सारा शरीर वज्र का हो गया।

इसके माध्यम से वह कहते हैं कि जिस हिस्से पर माँ की निगाह नहीं पड़ी समझो उस हिस्से में कमजोरी रह गई। जीवन का जो भाग माँ के निर्देशन के बिना बीत गया, उसमें कमजोरी रह जाएगी, यह जिनवाणी माँ है। यह हमें कदम-कदम पर शिक्षा दे रही है, माँ तो माँ होती है, आत्मा में भी माँ है, देह-देवालय में भी आत्मा है।

किसी काम से घर से निकले और वहाँ से कहीं और जाना पड़ गया। घर पर सूचना नहीं दे पाए। कहीं फँस गए ऐसी उलझन में फँसे कि फिर आ नहीं पाए - ऐसी स्थिति बन गई। दो-तीन दिन लग गए, किसी ने पकड़ लिया या बंदी बना लिया, कुछ पता नहीं चला। दो-तीन दिन बाद आप वहाँ से लौट कर आए। आते ही बाहर बेल बजाई, पत्नी देखते ही क्या प्रतिक्रिया करेगी? बोलेगी कि कहाँ थे,

सूचना नहीं दे सकते थे? और माँ प्रतिक्रिया करेगी – बेटा कहाँ रह गया था, कोई तकलीफ तो नहीं हुई? ऐसे ही यह जिनवाणी माँ है जो हमारे हित की बात करती है, हमारी आत्मा माँ है, जिसके सान्निध्य में रह करके सारे दु:ख, संकट तथा तकलीफें मिट जाती हैं। ऐसी यह सल्लेखना अपनी आत्मा से मिलान कराने वाली है। अब तक अपने को नहीं देखा। अब तो अपने को देखो, पर की तरफ मत देखो।

परदेसियों से ना प्रीति लगाना।

जिनके प्रदेश भिन्न-भिन्न वे सब परदेसी हैं और परदेसियों से न प्रीति करना; क्योंकि उनको तो एक-न-एक दिन छोड़कर के चले ही जाना है, अपने से प्रीति हो तो ही काम बनेगा।

यदि जीवन बच गया तो कोई बात नहीं, स्थितिजन्य भी तो त्याग होते हैं। जब तक सूर्य उदय नहीं होगा तब तक भोजन नहीं करूँगा। यह त्याग स्थितिजन्य है। सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करूँगा, सूर्यास्त यदि 3:00 बजे हो जाए तो 3:00 बजे के बाद नहीं लूँगा और यदि 5:00 बजे अस्त होता है तब 5:00 बजे के बाद नहीं लूँगा, ये सब स्थितिजन्य त्याग हैं।

यदि 7:00 बजे अस्त होता है, तब 7:00 बजे के बाद नहीं लूँगा। यह भी स्थितिजन्य त्याग है, हर जगह स्थितिजन्य बात होती है, यहाँ भी स्थितिजन्य बात है।

भेदविज्ञान के बिना यह सारे कार्यकारी नहीं होते हैं, इसलिए पहला कदम भेदविज्ञान सम्यग्दर्शन है, सबसे पहले मिथ्यात्व का त्याग होता है, सबसे पहले उल्टी मान्यता का त्याग होता है। शरीर मैं हूँ – इस मान्यता का त्याग होता है, उसके बाद आगे बढ़े तो अणुव्रत, शिक्षाव्रत, गुणव्रत ग्रहण किया जाता है। 12 व्रत के पश्चात् श्रावक दशा में सल्लेखना की चर्चा है, यदि मुनिव्रत ले लिया हो तो उसके अंतिम समय में सल्लेखना होती है।

कदाचित् आयु शेष रह गई तो आहार आदि को ग्रहण कर लूँगा। जंगल में रास्ता भटक गए, तीन-चार, पाँच-आठ दिन बीत गए कि तब अपनी दशा देखकर समझ में आ जाता है रास्ता मिलेगा या नहीं तब त्याग करना चाहिए। अब लगता है कि जीवन पूरा होने का काल आ गया है, इसलिए अन्न-जल का त्याग करता हूँ, अब आराधना में समय बिताऊँगा।

आप ऐसी जगह गिर जाएँ जिस जगह से कोई निकालने वाला नहीं है, आपकी आवाज़ कोई सुनने वाला नहीं है। अब आप क्या करोगे? कभी भी ऐसी परिस्थिति हो सकती है कि आपके घर वाले महीने भर की यात्रा को जा रहे हों, उन्होंने सोचा कि आप निकल गए हैं और ताला लगाकर चले गए। आप वॉशरूम गए थे और जब सब रेलवे स्टेशन पहुँचे तब पूछा कि 'वो कहाँ हैं?' किसी ने कह दिया कि 'आगे वाली गाड़ी में निकल गए थे शायद,' अरे! वे तो नहीं आए, ताला तो लगाकर आ गए अब।

यहाँ कुछ खाने की व्यवस्था नहीं है, चारों तरफ ताले लगे हुए हैं और मेरी इतनी हिम्मत है नहीं कि दरवाजा तोड़कर बाहर निकल जाऊँ। फोन है नहीं, नेटवर्क है नहीं, लाइन कटी हुई है, सुबह से शाम हो गई, सारे डिब्बे तलाश लिए कुछ भी नहीं है, महीने भर को जाना था तो सब खाली कर दिया।

पानी भी नहीं था क्योंकि बाल्टी, भगोना आदि का पानी निकालकर उसको उल्टा करके रख दिए गए थे; क्योंकि यदि पानी पड़ा रहेगा तो उसमें अनंत जीव उत्पन्न हो जाएँगे और वह ताला लगाकर मुंबई, दिल्ली, कोलकाता जैसी जगह बड़ी दूर पहुँच गए। अब कोई आवाज सुनने वाला नहीं, कोई पुकारने वाला नहीं, पीने के लिए पानी की एक बूँद नहीं। अब सल्लेखना ही उपाय बच जाता है।

अब जब घर में बंद हूँ तब तक के लिए सब त्याग है, अब आराधना

करूँगा और यदि कोई आकर के ताला खोल देगा तो ग्रहण करूँगा अन्यथा त्याग है। यदि जीवन शेष रहेगा तो आहार आदि को ग्रहण करूँगा, यह संन्यास ग्रहण करने का क्रम है। कोई भी घटना किसी के भी साथ घटित हो सकती है, हजारों लोगों में से किसी एक के साथ में घटित हो जाती है, हो सकता है कि हमारे और तुम्हारे साथ भी ऐसी घटना घटित हो जाए। जब इस तरह की घटना घट जाए तब त्याग कर दें।

रोग आदि होने पर क्या करें, दवाई छोड़ दें? नहीं! यह तो संयम है, अभी तो पाँचवाँ गुणस्थान है, त्यागी है, व्रती है, अभी तो आराधना तपस्या कर रहा है, शरीर छोड़ने की, जीवन पूरा करने की भावना मत करना। आत्महत्या करने की भावना मत करना। रोग आदि होने पर यथाशक्ति औषधि करें – यह जिनवाणी की आज्ञा है। कई लोग ज्यादा होशियार होते हैं, उनसे दवाई का कहो तो कहते हैं, नहीं मैं दवाई नहीं लूँगा, अरे भाई! हिंसक अशुद्ध दवाइयाँ मत लो, पर प्रासुक औषधियाँ तो लो। योग्य रीति से निर्मित सेवन करने योग्य दवाइयों का सेवन तो करो। यदि अशुद्ध भी है तब यदि त्याग नहीं है तो क्या हुआ, उसमें सल्लेखना लेने वाला व्यक्ति बहुत सावधानी रखेगा, रोग आदि होने पर यथाशक्ति उपचार कीजिए, डॉक्टर को दिखाइए। शरीर के उपचार के लिए घर में वैद्यजी आएँगे और आत्मा के उपचार के लिए घर में पण्डितजी आएँगे। अंत समय चल रहा है, शरीर को सँभालना है, कोई ऐसा न समझ ले कि यह व्यक्ति तो मरना ही नहीं चाहता है।

सल्लेखना में संतुलन कैसा होता होगा? उसकी चर्चा चल रही है; परंतु जब रोग असाध्य हो जाए, असाध्य अर्थात् टाला नहीं जा सकता, पूर्ति नहीं की जा सकती, असाध्य निवारण नहीं किया जा सकता और किसी प्रकार से भी उपचार का लाभ न हो। असाध्य रोग हो गया हो, उपचार भी किया जा रहा है और लाभ भी कुछ नहीं हो रहा है, तब ऐसी दशा में यह दुष्ट शरीर त्याग करने योग्य कहा है।

हजार रुपये देकर भी सुधरवाते हैं और जब ज्यादा ही परेशान करने लग जाए तब उसे हटाते हैं। अब नया खरीदेंगे, पुराना शरीर छूट जाएगा तब नया शरीर मिल जाएगा। शरीर को तो विरोधी कहा है और धर्म से इच्छित फल आता है। धर्म साथी है, विशेषता से पालन करने योग्य है, शरीर तो मरने के बाद दूसरा भी मिलेगा; परंतु धर्म-पालन करने की योग्यता प्राप्त करना महाभाग्य से दुर्लभ है –

इह विधि गए न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी।

– छहढाला, चौथी ढाल – 06

एक बार यदि यह चीज हाथ से निकल गई तो दोबारा नहीं मिलेगी, दोबारा मिलना महान दुर्लभ है, यहाँ से छोड़ देने के बाद आपको धर्म-पालन करने की योग्यता मिलेगी, इसकी कोई गारंटी नहीं है। जब आप घर से निकल जाएँ या निकाल दिए जाएँ तब आपके पास कोई गारंटी नहीं है कि कहाँ ठिकाना मिलेगा? क्या पता कैसी परिस्थितियाँ होंगी? जीवन पूरा हो जाने के बाद कुछ काम नहीं आएगा, वैराग्य की अनगिनती बातें हैं।

पण्डित दौलतरामजी चौथी ढाल – 7 में लिखते हैं –

धन समाज गजबाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारन स्व-पर, विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ।।

करोड़ उपाय बना करके भी जीवनभर भेदविज्ञान का अभ्यास करो। जीवनभर धर्म को अपनाओ, धर्म की शरण करो, धर्म बाहर नहीं है, अंदर में है। शरीर साथ नहीं दे रहा है, धर्म फिर भी किया जा सकता है। धर्म तो स्वाधीन क्रिया है, शरीर में हाथ हिलाने की भी ताकत नहीं है, जवान नहीं हिल पा रही है, आँखें झपकाने जितनी भी सामर्थ्य नहीं बची है, लेकिन अंदर में ज्ञान पूर्ण कार्य कर रहा है – ऐसी स्थिति में

भेदविज्ञान करो। जवानी के जोश में जब 'इसको मैं उठा सकता था' 'इसको फेंक सकता था' बड़े गर्व से कहा करते थे, अब हिला भी नहीं सकते हैं। भेदविज्ञान का अवसर मिल गया है, मैं इसे हिलाना-चलाना चाहता हूँ लेकिन यह हिल-डुल नहीं रहा है। मैं बोलना चाहता हूँ लेकिन बोल नहीं पा रहा हूँ, यह जो शरीर की स्थिति नजर आ रही है, इसे देखकर भेदविज्ञान होता है। यह धर्म-पालन का अवसर दुर्लभ है एक बार चला गया फिर पुनः नहीं मिलेगा, यह जैनकुल नहीं मिलेगा, त्रस पर्याय नहीं मिलेगी, क्या पता नरक में चले जाएँगे, कहाँ जाएँगे, कुछ ठिकाना नहीं है।

शरीर तो दूसरा अवश्य मिलेगा, कपड़े फट गए तो दूसरे अवश्य मिलेंगे, इस पंचम काल में देह मुक्ति नहीं है, दृष्टि मुक्ति तो है, छठाँ-सातवाँ गुणस्थान तक तो हो सकता है लेकिन देह मुक्त नहीं हो सकती, जीवन मुक्त नहीं हो सकते, दृष्टिमुक्त हो सकते हैं।

यह जो शरीर है, यह हमें पसंद करके थोड़े ही मिला था, फिर अपने पुण्य-पाप कर्म पर भरोसा रखो, अपने नामकर्म पर भरोसा रखो, जिसमें परिणाम लगे होंगे, जैसे कर्म खर्च होगा, वैसा उसका उदय आएगा, उस तरह की स्थिति बनेगी, एक समय के लिए भी उस स्थिति को बदलने की सामर्थ्य इंद्र और जिनेंद्र दोनों में नहीं है।

यह अशरीरी पद की ही तैयारी है, शरीर तो मिलेगा लेकिन धर्म-पालन की योग्यता प्राप्त करनी है।

यदि देव गति में चला गया तो हजारों वर्ष भोगों में ऐसे ही निकल जाते हैं। फुर्सत ही नहीं है, नरक में रोते-रोते सारी जिंदगी निकल जाती है। त्रस में चला गया, कुछ खबर नहीं है, मनुष्य में चला गया 8 वर्ष तक धर्म करने की योग्यता नहीं मिलेगी।

सारी अनुकूलताएँ भी मिल गईं, फिर भी परिणाम कहाँ से लेकर आओगे। सहयोग मिल गए तो विचार-दर्शन कहाँ से लेकर आओगे।

आपकी गाड़ी बिगड़ जाए तब आप क्या करते हैं, फेंक देते हैं, बेच देते हैं? नहीं-नहीं सही करते हैं, फिर खराब हुई तो फिर सही करते हैं, फिर खराब हुई तो फिर सही करते हैं। अब ज्यादा ही परेशान करने लग गई और सही होने की संभावना भी नहीं लग रही है, तब उसको हटाकर नई खरीद लेते हैं, हमारा धर्म, दर्शन पूर्ण व्यावहारिक है।

आपके मकान का रंग खराब हो गया, दीवार में दरार आ गई। थोड़ी-सी दरार हो गई तब आप उसको रिपेयर करते हैं, उसको छोड़ते नहीं हैं और जब जरूरत से ज्यादा स्थिति खराब हो गई तब उसको बदल देते हैं। अब इसकी जरूरत नहीं है अब यह हटाने जैसा हो गया है, नया ले आओ।

आपके कुर्ता-शर्ट आदि की थोड़ी-सी सिलाई खुल जाए तब वापस सिल लेते हैं, बटन खुल गया हो तो बटन लगा लेते हैं, थोड़ा-सा दाग लग जाए तो धोकर साफ कर लेते हैं, उसका उपचार करते हैं, उसको लेकर फेंक नहीं देते और जब ऐसी स्थिति बनती है कि वह सही नहीं हो सकता, उसकी मरम्मत की स्थिति नहीं है तब आप क्या करते हैं? उसको निकाल कर अलग कर देते हैं। यह शरीर भी कपड़े की तरह है - उपचार करो, इलाज कराओ, व्यायाम करो, घूमने जाओ अर्थात् संभालने को कह रहे हैं; क्योंकि यह मेरे धर्म साधन में सहयोगी होता है, शरीर से धर्म नहीं होता; लेकिन शरीर की स्वच्छता के साथ आपके आंतरिक परिणाम की निर्मलता का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, शरीर खराब होता है तब आपका उपयोग धर्मकार्य में नहीं लग पाता है।

शरीर की स्थिति बिगड़ने पर आपका मन नहीं लग पाता है, इसलिए सावधानीपूर्वक शरीर को संभालने की बात कही गई है। रोग आदि होने पर यथाशक्ति औषधि करें, शक्ति के अनुसार ज्यादा खींचना नहीं; परंतु जब रोग असाध्य हो जाए, किसी प्रकार भी उपचार से लाभ न हो तब ऐसी दशा में यह शरीर दुष्ट समान हो तो सर्वथा त्यागने योग्य कहा है।

कितना भी खिलाओ, पिलाओ यह शरीर तो अंत में साथ छोड़ेगा ही, यह तो धोखा देने वाला है, यह धोखा देकर निकल जाएगा। इसका स्वरूप ऐसा ही है, इसलिए शरीर दुष्ट समान सर्वथा त्यागने योग्य कहा है।

यदि शरीर नहीं चल रहा है तो शरीर से ध्यान हटा दो और आत्मा पर केंद्रित कर दो, जो अपना साथ नहीं दे रहा है, तुम उसका साथ मत दो, उसकी सँभाल मत करो, पड़ोसी की वहीं तक सँभाल करना, जहाँ तक पड़ोसी धर्म निभाते हों। अब कह रहे हैं कि भेदविज्ञान का अभ्यास कर शरीर को सँभालने की क्रिया चलने दें और अंदर में भेदविज्ञान की धारा बहने दो। भेदविज्ञान की धारा में बहने वाला यदि कहता है कि शरीर को पड़ा रहने दो मैं दवाई नहीं लूँगा, मैं औषधि सेवन नहीं करूँगा। तो वह जिनवाणी की आज्ञा का उल्लंघन है – ऐसा नहीं करना चाहिए।

अंदर में भेदविज्ञान की धारा चल रही है, दवाई लेते हुए ठीक होना होगा तो होगा, नहीं होना होगा तो नहीं होगा।

डॉक्टर को दिखा कर आया हूँ, दवाई फायदा करनी होगी तो करेगी, नुकसान करनी होगी तो नुकसान कर जाएगी। ठीक हो जाएँगे तो उसके लिए तैयार हैं और बिगड़ जाए तो उसके लिए भी तैयार हैं।

यह सल्लेखना की भावना चल रही है, हमें तो सहज रहना है; क्योंकि सहजता से सल्लेखना सार्थक होती है। यदि सल्लेखना के काल में बहुत इच्छाएँ हो गईं तो अपनी सल्लेखना बिगड़ गई। सल्लेखना में परिणाम स्वयं को सँभालने हैं। शरीर को तो डॉक्टर, घरवाले, दवाइयाँ सँभाल रही है। दवाइयाँ अपना काम कर रही हैं, शरीर अपना काम कर रहा है और मैं अपना काम कर रहा हूँ। मुझे अपना काम करना है – यह सल्लेखना है।

शरीर दुष्ट के समान है, सर्वथा त्याग करने योग्य है, इस शरीर से पीछा छुड़ाओ। एक लाख रुपये का मोबाइल लेकर के आए और खराब हो गया तब उसे फेंक थोड़े ही देंगे, रिपेयर करेंगे। दो, पाँच, पंद्रह

इसलिए जो भी कार्य करना है, अभी करना है। शरीर तो दुष्ट है, इससे उपयोग को हटाओ। जो इच्छित फल को प्रदान करने वाला धर्म है, आत्मधर्म है, ज्ञानधर्म है, इसकी आराधना करो। सल्लेखना अर्थात् यही सुखी होने का उपाय है।

शास्त्रों में जीने और मरने दोनों का उपाय बताया है, जियो तो कैसे जियो? यह तो शास्त्र कहते ही हैं। मरो तो कैसे मरो? यह बात भी हमारा जिनागम बताता है, पूरे विश्व में एकमात्र ऐसा दर्शन है जो जीने की कला तो सिखाता ही है साथ ही मरने की कला भी सिखाता है। हमारे ही पुण्य का योग है, जिसके कारण हम इस जैन शासन की छत्रछाया में जी रहे हैं। यह प्रकरण जीवन जीने की कला का नहीं मरने की कला का चल रहा है, मरने की कला-मृत्यु की कला।

जिनवाणी माँ इस सल्लेखना के माध्यम से मृत्यु को महोत्सव बनाने की बात कर रही है। सल्लेखना श्रावकों और मुनिराजों दोनों के लिए हो सकती है। इस सल्लेखना व्रत की 12 वर्ष की मर्यादा कही है, जब असाध्य रोग हो जाए, वृद्धावस्था आ जाए, किसी प्रकार का कोई दुर्निवार उपसर्ग आ जाए, जो देवों या मनुष्यों द्वारा किया गया हो, धर्म का नाश होने की विशेष परिस्थिति उपस्थित हो जाए, शरीर जब पके हुए पान की तरह लगने लगे, अंदर में आयु कर्मरूपी तेल नहीं बचा हो और जब जीवनरूपी दीपक बुझने वाला हो, जब ऐसा लगने लगे तब संन्यास धारण करना चाहिए।

प्रतिज्ञा ऐसी कीजिए कि यदि जीवन बच जाए तो आहार आदि ग्रहण करूँगा अन्यथा सबका त्याग।

शरीर को त्याग करने का मतलब अब इसको खिलाएँगे-पिलाएँगे नहीं, अब और हम नहीं देखेंगे, अब अंत समय की स्थिति में भोजन आदिक को धीरे-धीरे कम करते जाएँगे, शरीर के प्रति मोह कम कर दो, इस विधि की चर्चा यहाँ कर रहे हैं।

नया और अच्छा सामान मिलने पर भी यदि कोई पुराना सामान रखे बैठा रहता है, तो उससे बड़ा मूर्ख और कोई इस दुनिया में नहीं है।

किसी नगर में राजा का अचानक मरण हो गया और निर्णय हुआ जो भी महल के बाहर प्रातः सबसे पहला व्यक्ति मिलेगा, उसे राजा बनाया जाएगा। कि तब प्रातः सबसे पहले एक भिखारी मिल गया तो उसे राजा बना दिया गया। राज दरबार के बाद वह अपने राजा के कपड़े पहने हुए है और भिखारी वाले कपड़े सँभाल कर रख रहा है। जब मंत्री ने पूछा – यह कपड़े क्यों रख रहे हो? तब वह कहता है – मैं जब यहाँ से जाऊँगा तो यह कपड़े काम आएँगे। मंत्री माथा ठोक लेता है, अरे प्रभु! तू समझ ही नहीं पा रहा है कि तुझे कौन–सी अवस्था मिल गई है, तू क्या बन गया है, किस पद पर बैठा हुआ है, तू राजा का मतलब भी नहीं समझता है।

हमको यहाँ नए कपड़े नई चीज मिलने वाली है, नई व्यवस्थाएँ, नया जन्म होने वाला है, नया शरीर, देव गति मिलने वाली है और व्यक्ति अपना पुराना सड़ा–गला शरीर सँभाल रहा है, इसका मतलब यह है कि उसे भरोसा नहीं है कि यह छूट जाएगा तो नया मिलेगा, यह जीवन तो नया मिलेगा ही। नया शरीर मिलने की तो गारंटी है, पर धर्म की गारंटी नहीं है, जैनकुल की गारंटी नहीं है, मनुष्य पर्याय की गारंटी नहीं है, संज्ञी पंच इंद्रिय की गारंटी नहीं है। जब तक संज्ञी पंच इन्द्रिय की गारंटी नहीं है, मनुष्य पर्याय की गारंटी नहीं है तब तक यह चीज मिल गई तो उसे खोना नहीं चाहिए, इसका लाभ लेना चाहिए।

यह सल्लेखना है, इसमें अचानक कुछ भी नहीं होता है, सारी विधि है। अचानक से ऑक्सीजन हटा दी, सारे उपचार बंद कर दिए, ऐसा अचानक से नहीं चलेगा। भगवती आराधना में त्याग के संदर्भ में बहुत सुंदर चर्चा की है। विधिपूर्वक शरीर के त्याग से सुखी व दुःखी न होकर समाधिपूर्वक देह छूटेगी, इसका नाम सल्लेखना मरण है।

संयमपूर्वक मन-वचन-काय का उपयोग आत्मा में केंद्रित करना चाहिए। निश्चित हो संयमपूर्वक आराधना करो, दु:खी होने की जरूरत नहीं है। दु:खी होकर खेदखिन्न नहीं होना है, पीड़ित परेशान नहीं होना है, मैं दु:खी होने के लिए सल्लेखना नहीं ले रहा हूँ, मैंने व्रत सुखी एवं आनंदित होने के लिए लिया है, त्याग दु:खी होने के लिए नहीं किया है। कई लोग कहते हैं कि मैं तो रात्रि भोजन त्याग करके दु:खी हो गया, अणुव्रत-महाव्रत क्या दु:खी होने के लिए थे? मुनि दु:खी होने के लिए बने हैं, वह आनंद का मार्ग है? ये सब कार्य सुखी होने के लिए किए जाते हैं, मन-वचन-काय का उपयोग आत्मा में केंद्रित होना चाहिए।

उपयोग आत्मकेंद्रित करना चाहिए अर्थात् मन आत्मा में लगा दो, वचन आत्मा की चर्चा में लगा दो, काय चेष्टा बंद कर दो, इसका मतलब है मन-वचन-काय का उपयोग आत्मा में लगाना।

आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारूँ।
अरिहंत सिद्ध साधु रटना यही लगाऊँ।।

अरिहंत सिद्ध साधु की रटन शुरू हो गई है, अरहंत अवस्था चाहिए, थोड़ा समय और है सिद्ध ही होंगे, चारों ओर सल्लेखना वालों की बात है। जन्म-जरा-मृत्यु आत्मा में नहीं है, आनंद कैसे नहीं होगा? देह छूटने के काल में मृत्यु के नजदीक यह दु:खी है इसलिए नहीं होगा; क्योंकि यह आत्मा में नहीं है, जन्म-मृत्यु-बुढ़ापा मुझ में नहीं है, यह शरीर से संबंधित हैं। कोई कहे कि ''मैं जान से मार दूँगा, तुझे गोली मार दूँगा'' तुझे मारना है तो मार दे, मैं वह तत्त्व हूँ जो मरता ही नहीं हूँ, जब मैं मरने वाला तत्त्व ही नहीं हूँ, मैं मरता ही नहीं हूँ तब कोई व्यक्ति मुझे मौत की बात करके डरा कैसे सकता है।

सल्लेखना लेने वाला व्यक्ति पंचम गुणस्थानवर्ती है, उसके दो कषाय चौकड़ी का अभाव है, इसलिए उसके तकलीफ या पीड़ा नहीं हो सकती, उसकी अनंतानुबंधी के साथ-साथ अप्रत्याख्यानावरण भी

चली गई है। 9999 में से 9900 रुपए चुक गए, अब दो कषायों के अभाव से 9900 चुक गए अब मात्र 99 रुपए बचे हैं, अब जन्म-जरा-मरण की कोई तकलीफ नहीं है।

तकलीफ या पीड़ा हो रही है, वृद्ध अवस्था में हाथ-पैर सूज रहे हैं, शरीर काम नहीं करता है, घुटने व कमर काम नहीं करते हैं, इतनी पीड़ा हो रही है यह सब मुझमें नहीं है - ऐसा चिंतवन करके निर्ममत्वी होकर ममत्व का त्याग करके विधिपूर्वक आहार को घटाना है। धीरे-धीरे काम करता है, दो रोटी से आधी पर आ गया, आधी से एक ग्रास पर आ गया, फिर लिक्विड में जूस पर आ गया, फिर दूध पर, पानी पर आ गया। ऐसे धीरे-धीरे त्याग करते हैं। किस चीज का कितने दिनों तक सेवन करें, शरीर की कैसी अवस्था हो जाने पर किस चीज का सेवन करते रहें, इसकी बहुत विस्तृत प्रक्रिया है।

सल्लेखना में जिस प्रकार की त्यागने की प्रक्रिया बताई है इस तरह की प्रक्रिया ग्रहण करने की भी है। ग्रहण करने की प्रक्रिया अर्थात् एक महीने का उपवास किया और अगले दिन पारणा है तो क्या हलुआ खा लें? नहीं, मर जाएगा। उपवास से उठा हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे लेगा, अचानक से ग्रहण नहीं करेगा, एक-एक दिन की प्रक्रिया बताई है, कालीमिर्च की उकाली लेकर लिक्विड से शुरू करेगा, पानी से शुरू करेगा, धीरे-धीरे जैसा होगा वैसा शुरू किया जाएगा, त्याग के जैसी ही उठाने की प्रक्रिया है।

यहाँ तो जीवन को समाप्त करने की बात है, क्योंकि अब कोई उम्मीद बची नहीं है, यदि उम्मीद बची हो तो पहले तो जीवन को बचाओ, उम्र दिख रही है तो प्रयास करो, उम्मीद यदि नहीं दिख रही है, तो समाधिमरण करें।

ऐसा चिंतवन करके निर्ममत्व होकर विधिपूर्वक आहार त्याग कर अपने त्रिकाल अकषाय ज्ञाता मात्र स्वरूप के लक्ष्य से काय

कृश करनी चाहिए। धीरे-धीरे करके शरीर ऐसा कमजोर होता चला गया, धीरे-धीरे होना चाहिए, इसकी विस्तृत चर्चा भगवती आराधना में मिलती है।

तत्त्वार्थ सूत्र और उसकी टीकाओं में सल्लेखना वाले सूत्र और उसके अतिचारों वाले सूत्र में इसकी विस्तृत चर्चा मिलेगी।

किसी भी प्रकार का कोई नियम न टूटे – ऐसी दृढ़ता हृदय में लानी चाहिए –

जागे नहीं कषाएँ नहीं वेदना सतावे,
तुमसे ही लौ लगी है, दुर्ध्यान को भगाऊँ।।
आतमस्वरूप अथवा आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यहीं लगाऊँ।।
धर्मात्मा निकट हो, चर्चा धरम सुनावें।
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ।।

जिनवाणी पढ़िए, परन्तु जिनवाणी कहती है कि उपयोग हटाओ, यदि जिनवाणी में भी उपयोग अटका रहेगा तो सल्लेखना नहीं होगी। उपयोग हर तरफ से हट जाना चाहिए। एक आत्मतत्त्व को छोड़कर अन्य सभी जगह उपयोग लगाना योग्य नहीं है। जिनवाणी अमृत है, इस अमृत का पान करो। भेद-विज्ञान का अभ्यास करो, भेद विज्ञान के बल से एक-एक को भिन्न करते हुए आगे बढ़ते चले जाओ, सबसे उपयोग हटाते-हटाते अन्दर जाते जाइए, आपका रास्ता खुलता जाएगा, प्रत्यक्षरूप से भिन्न संयोग से उपयोग हटाओगे और शरीर तक आ जाओगे, फिर शरीर और आत्मा दो दिखने लग जाएँगे। अब शरीर से भी उपयोग को हटा दो, फिर अंदर में द्रव्यकर्म और भाव कर्म दो रास्ते दिखाई देंगे। द्रव्य कर्म को पुद्गल के खाते में रख दो, भाव कर्म के साथ में ज्ञान भी दिख रहा है, तब बोले भाव कर्म भी मैं

नहीं हूँ, राग-द्वेष भी मैं नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, चेतन ज्ञान-दर्शन का व्यापारवाला मैं हूँ, ज्ञान-दर्शन का व्यापार तो दरवाजा है, इसके भीतर तो खजाना दिखने वाला है।

ज्ञान में अटकना नहीं है, ज्ञान तो आत्मा में प्रवेश करने की एंट्री पॉइंट है, जब ज्ञान ही इतना सुंदर है फिर ज्ञानवान कितना सुंदर होगा। जब ज्ञानरूपी रत्न की इतनी महिमा है तब ज्ञान जैसे अनंत रत्न मिलने वाले हैं। जैसे ही अंदर पहुँचेंगे तो वहाँ अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य आदि अनंत गुणों का लबालब भरा खजाना हमें दिखने लगेगा।

उनका रस फील होने लगा, और जब वह मिल गया तब यह शरीर किसको चाहिए। शरीर तो छूट जाएगा। जब आपको नया मोबाइल मिल जाता है, तब पुराने मोबाइल को कितने दिन चलाते हो, पुराने को कोई नहीं रखता; क्योंकि अब तो नया मिल गया है।

एक नई गाड़ी आ जाने पर पुरानी खटारा कोई नहीं चलाता।

बच्चों को नया स्कूल बैग मिल जाता है तो पुराने बैग को हाथ नहीं लगाते। जिसे अंदर का खजाना मिल गया हो वह इस सड़े-गले शरीर की तरफ क्यों देखेगा?

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्रतोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्?॥11॥

हे जिनेन्द्र भगवान! आपको पलक झपकाए बिना एकटक देखता रहूँ। हे जिनेन्द्र भगवान! आपके चेहरे से अब नज़र नहीं हटती। अब अन्य को क्या देखूँ। लोगों के नेत्रों को अन्य कहाँ संतोष मिलेगा। क्षीर समुद्र के मीठे जल को जैसे पी लेने के पश्चात् खारे जल को पीने की इच्छा कौन करेगा?

दुनिया में खारे समुद्र का जल कोई पीना नहीं चाहता। एक तरफ तो अनंत गुण सम्पन्न त्रिकाली ध्रुव आत्मा है और दूसरी तरफ है ये सड़ा-गला शरीर, लेकिन ये इस वैभववान को न देख करके उस शरीर को देख रहे हैं। यह मूर्खता है। हमें शादी-विवाह के प्रसंगों पर ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं जब लोग बादाम के हलुवा को छोड़कर पानीपुरी के स्टॉल पर लाइन लगाकर दोने माँगते फिरते हैं।

मूरख घास-फूस में उलझा है। जंक फूड पर तो भीड़ लग रही है। जहाँ माल है, बादाम का हलुवा, बर्फी, रसगुल्ला, गुलाबजामुन है - उन चीजों को छोड़कर यह कचरे में उलझा है। वैसा ही यहाँ कर रहा है तो हमें ऐसा लगता है कि तुझे आत्मा का आनंद नहीं सुहा रहा है और इस कचरे शरीर में उलझा है। जगत के लोगों की पसंद है किसको क्या पसंद आ रहा है। पतासी, चाट-पकौड़ी, भेल-पूरी में उलझ गया है।

आत्मा का अमृत तो है ही, उसका तो पान करना ही है, यहाँ तो शास्त्र के अमृत की बात कर रहे हैं। सबसे पहले जिनवाणी का रसास्वादन करो, तत्त्वज्ञान का अमृत पीओ।

विद्वानों की सुंदर-सुंदर रचनाएँ आ गई हैं। क्रमनियमित, सहजता, तत्त्वचिंतन में अपना उपयोग लगाओ। इसका नाम शास्त्र के अमृत का पान करना है। अमृत भर-भर पीओ, इन्हें गुनगुनाते रहो।

शास्त्र अमृत के पान से यह बाहर की बात है और बाहर के बाद आत्मसन्मुखता द्वारा ये अंदर की बात है।

श्रीमद्राजचन्द्रजी ने अपूर्व अवसर में लिखा है -

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा।
जब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।।

स्वसन्मुखता द्वारा कषायों को कृश करना चाहिए। बाहर से हटकर अंदर में आओ और अंदर आते-आते कषायों को काटते चलो। शरीर भी क्षीण बना जा रहा है और कषाय भी कट रही हैं।

तत्पश्चात् मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका चतुर्विध संघ में से किसी की भी साक्षी में, उनकी उपस्थिति में सावधान हो करके समाधिमरण में उद्यमवंत होना चाहिए।

धर्मात्मा निकट हो चर्चा धरम सुनावे।
वे सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊँ।।

धर्मात्माओं का काम – धर्मात्मा निकट होवें और धर्म की चर्चा सुनावें। वे सावधान रखने का प्रयास कर रहे हैं और मेरी जिम्मेदारी है कि गाफिल न होने पाऊँ। मदहोश न हो जाऊँ, भटक न जाऊँ, मोह में न अटक जाऊँ, इसका नाम है गाफिल न होने पाऊँ।

लोग सोचते हैं कि कोई उनका समाधिमरण करा देगा तो अच्छा हो जाएगा, पर दूसरों पर निर्भरता से काम नहीं चलता। खुद बताओ सक्रिय थे कि नहीं? मैं गाफिल न होने पाऊँ। मैं भटक नहीं जाऊँ। शरीर की चिंता मुझे सताए नहीं। देह की तरह मेरा उपयोग नहीं चला जावे। पर के प्रति मोह का नाम है गाफिल हो जाना। अंत की आराधना से चिरकाल की हुई सम्यक् व्रत नियम रूप धर्म आराधना सफल हो जाती है। अंत भला तो सब भला।

अंत समय न बिगड़ जाए इसके लिए सावधान रहो। शरीर बिगड़ जाए तो परिणाम की सँभाल करना, मंदिर छूटा तो छूटा। साथ ही शरीर बिगड़ा तो व्रत नहीं कर पाया, धर्म नहीं सुन पाया तो नहीं सुन पाया, पर परिणाम क्यों बिगाड़ रहा है। मैंने लोगों को रोते हुए देखा है, अरे पंडितजी! मेरा तो धर्मध्यान चला गया, अब तो कुछ नहीं कर पा रहे हैं।

क्रिया बिगड़ गई तो कम-से-कम परिणाम को सँभाल लो। जो सँभल सकता है उसे संभाल लो। आत्मा के परिणाम को सँभाल लो अभिप्राय बदल लो। बाहर में जो होता है सो होने दो। ज्ञाता-दृष्टा बने रहो क्योंकि उससे क्षण-क्षण में दीर्घकाल में संचित कर्मों का नाश हो जाता है। अंत में या शरीर में एकत्व बुद्धि हो जाए तो जीवन भर की गई

आराधना निष्फल हो जाती है। सल्लेखना सुख-शांति प्रदान करती है, आनंददायिनी है, मृत्यु को महोत्सव बना देने वाली है, जीवन जीने की कला तो हर जगह देखने को मिलती है; लेकिन सल्लेखना वह प्रकरण है, जिसमें मरने की कला सिखाई जाती है, जब दुनिया में कोई सहारा दिखाई न दे, तब धर्म सदा काल शरण है –

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।।

केवली भगवान द्वारा बताया गया धर्म एकमात्र शरण है, वीतरागी धर्म है, जहाँ वीतरागता है वहाँ धर्म है, वहाँ सुख है।

उत्कृष्ट सल्लेखना 12 वर्ष की कही गई है, अचानक कोई स्थिति प्रतिकूल हो जाए तो उस समय आप सल्लेखना ले लीजिए। उस समय सल्लेखना की भावना भानी चाहिए। अचानक हमला, दुर्घटना, असाध्य रोग आदि की स्थिति में तुरंत विचार कीजिए। क्या पता किसके साथ में कैसी स्थिति आ जाएगी, सब कुछ अचानक संभव है, क्या पता कौन-सी स्थिति उदय में आ जाए और हँसती-खेलती दुनिया, जिसमें आप मज़ा मान रहे हैं, उसमें सजा हो जाए, तकलीफ हो जाए, विघ्न हो जाए।

इस दुनिया में अनगिनत विघ्न और बाधाएँ हैं, अच्छा-खासा, भरा-पूरा परिवार था और हार्ट-अटैक आ गया तो 3 महीने से अस्पताल में है, सब अस्त-व्यस्त हो गया। किसी का झमेला हो गया, कोई दुर्घटना हो गई, किसी की टाँग टूट गई, कहीं विस्फोट हो गया, कहीं बिजली गिरी तो कहीं खंभा गिर गया, कहीं करंट लग गया, कहीं सिलेंडर फट गया, कहीं आग लग गई, कुछ भी हो सकता है। कैसी भी परिस्थिति किसके लिए कब मौत का संदेश लेकर आ जाए, कहा नहीं जा सकता? इस दुर्लभ मनुष्य जीवन के यह अमूल्य क्षण कहीं बर्बाद

ना हो जाएँ, इसलिए संयम की भावना भानी चाहिए। अवसर आते ही प्रसंग बन जाने पर भावना भाओ और दृढ़ हो जाओ, उसे तात्कालिक सल्लेखना कहते हैं।

जैसे संकट अचानक आ जाते हैं, वैसे ही ऊपर के ऊपर अचानक गायब भी हो जाते हैं। 2 महीने से कोमा में थे और अचानक से ठीक हो गए, अब ठीक होकर घूम रहे हैं। अचानक पाप कर्म का उदय आ गया तो घबरा गए, सब अस्त-व्यस्त हो गए, 3 महीने निकल गए, जिस तरह से जीवन डिस्टर्ब हो जाता है, उस तरह से जीवन ठीक भी हो जाता है। अचानक आफत आ सकती है तो अचानक जा भी तो सकती है। कोरोना अचानक आया, अचानक जा भी तो सकता है। जैसे भारतीय वायुसेना का पायलट वर्धमान पाकिस्तान चला गया था और वापस लौटकर के आ गया, अचानक कुछ भी हो सकता है? अचानक कोमा से आ गए तब तो कुछ भी हो सकता; लेकिन जब जागृत हो तब धर्मात्मा निकट हो, चर्चा धर्म सुनावे - यह कार्य यथासंभव जरूर किया जाना चाहिए।

परिस्थितिजन्य सल्लेखना की इस स्थिति तक घर-बार, परिवार, आहार, जल का त्याग करते हैं, देह छूटेगी तो नई मिलेगी, यह कष्ट में ना छूटे, आराधना में छूटे।

यह देह मेरी नहीं है, यह मृत्यु मुझे नहीं आती है, इससे भिन्न मैं ज्ञायक तत्त्व हूँ, शरीर में रहने वाला जो शरीर से भिन्न है, वह तत्त्व मैं हूँ, शरीर में रहते हुए भी जो शरीर से अछूता है, वह मैं हूँ।

सल्लेखना के अंदर मुनि दीक्षा जरूरी नहीं है, श्रावक और मुनि दोनों ही के जीवन में सल्लेखना हो सकती है, मैं आत्मा या जीव हूँ, दोनों के एक ही अर्थ हैं, फिर भी जीव कहने पर वह बात सभी के लिए हो जाती है और आत्मा कहने पर उसमें आत्मबुद्धि आती है। आत्मा में अपनापन झलकता है, तादात्म्य झलकता है।

आत्मा शुद्ध है। इसके साथ में अपनापन झलकता है और जीव तो सभी हैं; यद्यपि जीव और आत्मा दोनों के गुण, धर्म, शक्तियाँ और स्वरूप में किसी प्रकार का अंतर नहीं है, दोनों एक ही हैं। जब हम कहते हैं आत्मा का अनुभव करो और जब कहते हैं जीव का अनुभव करो तो जीव का अनुभव थोड़ा अटपटा-सा लगता है। जीव और आत्मा दोनों ही द्रव्य हैं, दोनों ही वस्तु हैं, दोनों में कोई भी अंतर नहीं है।

जिंदगी भर पाई-पाई करके पैसा जोड़ा कि बुढ़ापे में काम आएगा, बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा किया कि बुढ़ापे में काम आएँगे। अंत समय के लिए सब कुछ किया और यदि अंत समय में काम ना आए तब सब कुछ बेकार हो गया।

जीवनभर धर्म साधन किया और अंत में सल्लेखना हो गई तो चलो जीवनभर की साधना सफल हो गई, जीवनभर की गई आराधना, धर्म और ज्ञान की सफलता इसी में है कि सल्लेखनापूर्वक मरण हो।

अंत की आराधना से अंतिम समय भी हमारा आराधना करते हुए बीता तो चिरकाल से की हुई व्रत नियम रूप धर्म-आराधना सफल हो जाती है, इसलिए अंत समय में भी छूट न जाए।

रत्नत्रय का हो पालन हो अंत में समाधि।
शिवराम प्रार्थना यह जीवन सफल बनाऊँ।।

जीवनभर रत्नत्रय का पालन होता आया और अंत में समाधि ना हो तो स्थिति गड़बड़ हो जाएगी, सल्लेखनापूर्वक जीवन बीत गया तो सब कार्य सफल हो गये; क्योंकि इससे क्षण मात्र में दीर्घकाल से संचित कर्मों का नाश हो जाता है।

बहुत लंबे समय से किए हुए पाप अपराध सब धुल जाएँगे, नष्ट हो जाएँगे। यह जैन धर्म हमें मिल गया है, न पाप की चिंता है, न पुण्य की परवाह है। हम पाप से डरते नहीं हैं और पुण्य की आकांक्षा नहीं है। पुण्य और पाप दोनों से पार परमात्म पद की प्राप्ति का हमारा लक्ष्य है।

जिसके लक्ष्य ऊँचे होते हैं, जिनके हौसले बुलंद होते हैं, वह छोटी-छोटी लड़ाइयाँ नहीं लड़ा करते हैं, उनकी लड़ाइयाँ बड़ी हुआ करती हैं, 6 महीने, 6 साल या 16 साल, जब भी जाना होगा, चले जाएँगे। कुछ भी मायने नहीं रखता है; क्योंकि मैं अनादि-अनंत तत्त्व हूँ, अनादि-अनंतता में यह 6 साल कुछ भी मायने नहीं रखते।

अनादि-अनंत तत्त्व में आफत, परेशानी दो महीने, दो साल के लिए आई, तब उसमें क्या दिमाग लगाना। यह सब तब होगा जब आप अपने आपको अनादि-अनंत मानोगे। बोलने से काम नहीं चलेगा कि मैं अनादि-अनंत हूँ - यह मानना भी पड़ेगा।

बच्चा चला गया, पत्नी चली गई, आँखों के सामने से किस-किस को जाते हुए देखूँगा, चले गए तो कोई बात नहीं। अनादि-अनंत अवस्था में किसका कितना साथ था? 10 साल, 20 साल, 50 साल का साथ था और तुम अनादि-अनंत तत्त्व हो। अनादि-अनंत में 50-60 साल का साथ क्या मायने रखता है। यह ऐसा साथ है कि जैसे 40 घंटे ट्रेन के सफर में कोई व्यक्ति अपनी सीट पर 4 मिनट के लिए बैठा और चला गया। 40 घंटे के सफर में 4 मिनट का साथ और उसके लिए आप कितना रोओगे?

अरे हम तो आए और चले गए, अरे भाई वह तो मुसाफिर है, जाएगा ही। अनादि-अनंत के सामने 50-60 साल कुछ भी मायने नहीं रखते हैं, अभी हमारा राग नहीं छूटा है इसलिए ऐसा विकल्प आता है, जिनवाणी की सारी बातें मोह को छुड़ाने के लिए ही तो हैं। ये सारे प्रकरण भगवान आत्मा की आराधना के लिए हैं। बहुत लंबे समय से संचित किया हुआ कर्म क्षण मात्र में नष्ट हो जाता है, बस अंत में मरण ना बिगड़ जाए।

कोई कहता है कि हमें कोरोना हो गया था, अस्पताल में भर्ती हो गए थे, हमारा तो मरण बिगड़ गया था। यह मरण बिगड़ता नहीं है।

हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया, उसके बावजूद पण्डित टोडरमलजी का मरण नहीं बिगड़ा। अंत समय में मंदिर नहीं जा पाए, दर्शन नहीं मिल पाए, पूजन नहीं हो पा रही है, सारा धर्मध्यान रखा रह गया है, जिंदगी में कभी जिन दर्शन बिना कुछ भी नहीं खाया और अब क्या करूँ। आप किस बात का विकल्प कर रहे हैं, धर्म बाहर में नहीं अंदर में होता है, धर्म परतंत्रता से नहीं होता धर्म स्वाधीनता से होता है। अवस्था बिगड़ गई कोई बात नहीं। अवस्थाओं में, परिस्थितियों में आपकी चलती नहीं है, पर मन मत बिगड़ने दो। वह आपकी पूँजी है, आपकी संपत्ति है, बाहर जो बिगड़ा सो बिगड़ा उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

शरीर बिगड़ गया, वह तो बिगड़ेगा ही, उसका नियंत्रक नामकर्म है, उस पर हमारा कुछ भी बस नहीं है, वह हमारे हिसाब से नहीं चलता है। इसलिए मेरे चलाने से कुछ नहीं होगा, इसलिए भेद-विज्ञान करो। यहाँ पंचम गुणस्थानवर्ती की बात हो रही है, उसके दो कषाय चौकड़ी के अभावजन्य विशुद्धता है।

यदि अंत में मरण बिगड़ गया अर्थात् असंयमपूर्वक या शरीर में एकत्व बुद्धिपूर्वक मृत्यु हो जाए तो जीवनभर की गई धर्म-आराधना निष्फल हो जाती है। शरीर से एकत्वबुद्धि टूट गई तो धर्माराधना सफल है और यदि एकत्व बुद्धि बनी रही तो ठीक नहीं है।

लोग रोते हुए कहते हैं कि पंडितजी मेरा सारा धर्म छूट गया, बताइए मैं क्या करूँ, मंदिर छूट गया, 70 साल से कभी पूजन नहीं छोड़ी और अब पूजन छूट गई, क्या करूँ। अब आपकी नहीं चल रही है, तब निश्चिन्त रहें, यह भेद-विज्ञान का अभ्यास किसलिए किया था। एकत्व बुद्धि को झटका से टूट जाना चाहिए, कोई परवाह नहीं है हमें।

देह मरे पर मैं नहीं मारता, अविनाशी मैं आत्मस्वरूप।
सहजानंदी शुद्धस्वरूपी अविनाशी हूँ, आत्मस्वरूप।।

रोज बोलता है, भक्ति करता है और डरता है कि मैं मर नहीं जाऊँ, अविनाशी हूँ और मर नहीं जाऊँ, जब यदि तू अविनाशी है, तब मर नहीं जाऊँ, यह बात कहाँ से आ गई, मैं अविनाशी हूँ – सल्लेखना की विधि में ऐसा विचार किया जाता है।

सल्लेखना की विधि में, चिंतन करना सिखाएँगे, चिंतन कैसा होता है वह भी सिखाएंगे, ये वे बातें हैं जो अंत समय में हर व्यक्ति को जानने और मानने योग्य हैं कि आज का दिन अंतिम दिन हो तो मैं भावना भा रहा हूँ, अचानक यदि हार्ट अटैक आ जाए तो देह से भिन्न आत्मतत्व की आराधना करना, बचने-बचाने का सारा विकल्प छोड़ दो, डॉक्टर जो सलाह दे सो कर लेना, पर कई बार करने का मौका ही नहीं मिलता, कहानी तो 2 मिनट में खत्म हो जाती है। धर्मात्मा निकट हो, धर्म चर्चा सुनावे – यह भावना ही तो भा रहे हैं। धर्म की चर्चा सुनावे, धार्मिक माहौल हो जाए। धर्मात्मा निकट हो और धर्म की चर्चा की जरूरत भी कमजोर लोगों को पड़ती है। यदि इसे पलट कर लिखें, इसकी बात का विरोध नहीं कर रहा हूँ धर्मात्मा निकट हो यह कमजोर व्यक्ति का मत है, अपने को इतना सबल, चिंतन को इतना सुदृढ़, व्यवस्थित और आराधना को इतना मजबूत बनाओ कि यदि बाहर में कोई व्यक्ति न भी मिले तो मेरा मरण समाधिपूर्वक हो सके, इतना अभ्यास, इतनी आराधना तो होनी ही चाहिए।

हमें किसी की जरूरत नहीं है, मिले तो अच्छी बात है, हमारा स्वयं का चिंतन होना चाहिए, हमारा धर्म साथी है, जब बीमारी आदि की दशा में सल्लेखना लंबे समय तक चले तब धर्मात्मा निकट हो वाली बात आती है, तब साथी आएँगे चर्चा सुनाते रहेंगे; लेकिन यदि उसका अवसर ही नहीं मिला, तब आपकी तैयारी कौन कराएगा?

जैसे रोड पर चलते हुए अचानक से एक्सीडेंट हो गया, अभी मृत्यु नहीं हुई; लेकिन अचानक से लगा कि अब तो मैं मरा। हाथ-पैर टूट

गए, हड्डियाँ टूट गईं, अभी रोड पर पड़े हुए हैं और हमने सल्लेखना समाधि की भावना भा ली, अब नहीं बचेंगे, चारों तरफ भीड़ इकट्ठी हो गई है। कोई कह रहा है उस गाड़ी को पकड़ो, कोई कुछ कह रहा है और हम अपने में चले गए। साथ में कोई नहीं हम अकेले थे, पब्लिक ने अस्पताल पहुँचा दिया, हमारा इलाज चल रहा है, कोई कह रहा है मोबाइल से घर वालों को सूचना दो। इस प्रकार की परिस्थिति किसी के भी साथ बन सकती है, समाधि की भावना भाओ। दुर्घटना का प्रसंग किसी भी समय बन सकता है।

लगता है इस देह के छूटने का समय आ गया है। लगता है इस देह की स्थिति अब इतने ही समय की है। अब इस देह के वियोग होने का काल आ गया है; कोई बात नहीं, नई देह मिलेगी; लेकिन मुझे तो देह धारण करनी ही नहीं है, इस काल में मैं दीक्षा नहीं ले पाया, मैं मुक्ति की प्राप्ति नहीं कर पाया, अब जो देह मिलेगी। उस देह से भिन्न अनुभव करके मैं सदा-सदा के लिए भिन्न तत्त्व की भावना भाता हूँ। मैं तो देह से सदा काल मुक्त था, मुक्त हूँ, देह ने मुझे जकड़ कर नहीं रखा है; क्योंकि देह के काल में भी मेरी देह से भिन्नता थी – ऐसा चिंतन चलता है।

इस समय अपना चिंतन बदल दो कि धर्मात्मा निकट हो, कौन मिलेगा, सड़कों पर कोई जैन आदमी मिल जाए यही बहुत है, धर्मात्मा निकट हो चर्चा धर्म सुनावे; लेकिन इसकी जरूरत क्या है? स्वावलंबन की भावना क्यों नहीं है। अपनी अनुभूति करो, अपने आपको देखो। रोने नहीं बैठना है कि मेरा मरण बिगड़ गया। कैसे बिगड़ गया? सँभालने की जिम्मेदारी मेरी है। मेरा मरण सुधारने की जिम्मेदारी किसी परिवारजन अथवा किसी साधर्मी की नहीं है अपितु मेरी स्वयं की जिम्मेदारी है।

मेरा मरण मैं सुधारूँगा। यह जिन धर्म मुझे मिल गया है, यह तत्त्व, वस्तुस्वरूप मुझे मिल गया है, साथ में धर्मात्मा, परिवारजन हों तो

ठीक है, लंबे समय की बात है, वे आएँगे और चर्चा सुनाएँगे और चले जाएँगे, घंटे दो-घंटे चर्चा करेंगे और चले जाएँगे, चर्चा के बाद हम अकेले में क्या करेंगे, हमें अकेले भी तो समय निकालना है।

यदि एकत्व बुद्धि नहीं टूटी तो जीवन भर की गई धर्म-आराधना निष्फल हो जाती है। जीवनभर किया और एकत्वबुद्धि-ममत्वबुद्धि में अटक गए तो सब निष्फल हो गया। अरे इसको बच्चा याद आ रहा है, अंत समय में यदि संपत्ति, बच्चा, बहू, बेटों के प्रति मोह चल रहा है, तो मरण बिगड़ जाएगा।

आचार्य अमृतचंद्र जैसे आचार्य की शरण में है, साल में एक बार समाधिमरण के प्रकरण को बार-बार पढ़ना चाहिए, सुनना चाहिए, क्या पता किसके साथ क्या स्थिति बन जाए। परिवारवालों को भी चाहिए कि एकत्व बुद्धि छुड़ाने का प्रयास करें, आप यदि साधर्मी, धर्मात्मा हैं और आप यदि उनका मरण सुधारना चाहते हैं, तो उन्हें मोह में मत फँसाइये।

लोग कहते हैं – 'अरे आपको कुछ नहीं होगा, डॉक्टर बचा लेंगे, आप कहीं नहीं जाने वाले हो' – ऐसी उल्टी पट्टी उन्हें मत पढ़ाओ। यह पढ़ाओ कि चले भी जाओगे तो क्या हो जाएगा। आप उन्हें उम्मीद बनाकर उनका मरण बिगाड़ रहे हो। आप उनसे कहो – मरण होगा, देह छूटनी होगी तो छूट जाएगी, आप यह विचार करो कि आप देह नहीं हो, उन्हें भेद-विज्ञान पढ़ाओ, उन्हें कहो कि हर आने वाला व्यक्ति जाता है। बचकर के भी क्या कर लोगे, देह छूटनी होगी तो छूट के ही रहेगी और रहनी होगी तो रह जाएगी, आयु कर्म होगा तो बच जाएँगे, नहीं होगा तो चले जाएँगे। आप यह शरीर हो ही नहीं – यह बात बताई जानी चाहिए, यह बात सिखाई-पढ़ाई जानी चाहिए, यह बात कान में पड़नी चाहिए।

यहाँ हम जैसे साधारण लोगों की बात हो रही है, बच्चों को पढ़ाइये सिखाइये कि समाधि कैसे की जाती है, कैसे कराई जाती है, क्या चर्चा

की जाती है। अब सरल हो जाओ, ज्ञाता-दृष्टा होकर बात करो। आप अपने परिवारजनों को बचाने का प्रयत्न करते रहिए, पर उन्हें धोखे में मत रखिए, उन्हें सही तत्त्वज्ञान दीजिए, सही मार्गदर्शन दीजिए, क्या पता यह जीवन कब पूरा हो जाए। शरीर में एकत्व बुद्धि टूट जाएगी तो काम हो जाएगा।

प्रश्न – अंत समय में समाधिमरण कर लेने मात्र से ही क्षण मात्र में पूर्व संचित कर्मों (पापों) का नाश हो जाता है, तो फिर युवावस्था में धर्म करने की क्या आवश्यकता है ?

लोग ऐसे ही होते हैं कि सब अंत समय में कर लेंगे, अभी क्या करना है, अंत समय में संन्यास धारण करने से ही सारा मनोरथ पूरा हो जाएगा। यह अच्छी बात बता दी, अंत में त्याग करेंगे समाधि कर लेंगे।

कुछ लोग कहते हैं – 'पंडितजी हमने अपने बाबूजी को अंतिम समय में सब छुड़वा दिया।' उनसे पूछते हैं – 'क्या उन्होंने जीवनभर कुछ धर्म किया था, कुछ धर्म सुना था, नहीं सुना ? तब तुम्हारे ऊपर से त्याग कराने से क्या होगा ? अंदर में त्याग कर उनके प्रति अपनापन छोड़, यदि जीवनभर धर्म-आराधना में काल बिताया है तो तुम्हें कुछ करने की जरूरत ही नहीं है, वह अपने आप सब कर लेंगे।

यदि जीवन में कुछ नहीं किया है तो बाहर से उतार देने मात्र से भी कुछ नहीं होगा। सल्लेखना में यदि योग्य जानते हैं, स्थिति देखते हैं तो कपड़े भी उतरवा सकते हैं उसका भी निषेध नहीं है। यह पंचम गुणस्थानवर्ती की भूमिका है, यदि आचार्य योग्य समझें तो उतरवा सकते हैं ? जो जीव अपनी पूर्व अवस्था में धर्म से विमुख रहे हैं अर्थात् जिन्होंने तत्त्वज्ञानपूर्वक व्रत नियम नहीं लिए हैं, धर्म-आराधना नहीं की है, जीवन में कभी स्वाध्याय नहीं किया, जिनवाणी की चर्चाएँ कभी नहीं सुनी हैं, वह जीव अंतकाल में धर्म समझ कर अर्थात् संन्यास युक्त कभी नहीं हो सकते।

जीवन भर किया नहीं तो अंत में कभी नहीं कर सकते, साल भर पढ़ाई न की हो और कल परीक्षा देने जाना हो तो हाथ-पैर फूल जाते हैं - 'क्या करूँगा मैंने कुछ पढ़ा ही नहीं है।' माथा घूम जाता है। कोई कुछ नहीं कर पाएगा, साल भर क्यों नहीं पढ़ा, अंत के लिए क्यों बैठे रहे? जैसे-जैसे दिन निकलते जा रहे हैं वैसे-वैसे कोर्स बढ़ता जा रहा है। जितने दिन नहीं पढ़ेंगे उतने दिनों का कोर्स माथे पर चढ़ना जाता है। 3 महीने फिर 6 महीने - ऐसा कोर्स माथे पर बढ़ता जा रहा है। अरे अंदर ही अंदर तैयारी करता रहे तो अंत में ज्यादा जोर नहीं आएगा, फिर यदि अचानक भी परीक्षा की तारीख आ गई तो भी तैयार रहेगा, टॉप करेगा, इसलिए कह रहे हैं कि समाधिमरण सल्लेखना की तैयारी अंत में नहीं की जाती।

वह संन्यास युक्त कभी भी नहीं हो सकता, अंत काल में धर्मयुक्त नहीं हो सकता। चन्द्रप्रभ चरित्र के प्रथम सर्ग में कहा है -

चिरन्तनाभ्यासनिबन्धनेरितागुणेषुदोषेषु च जायते मतिः।

अर्थात् चिरकाल के अभ्यास से प्रेरित करने में आई हुई बुद्धि गुण अथवा दोष में जाती है, जिसकी बुद्धि लंबे समय से आराधना में लगी हुई थी उसकी बुद्धि गुण और दोष में जाती है कि यह गुण है, इसे करना और यह दोष है, इसे नहीं करना। राग-रंग में मरेगा, भव बिगड़ जाएगा, सल्लेखना की तैयारी अभी से करते रहें, आराधना और संयमपूर्वक हमारा समय व्यतीत होना चाहिए। दुनिया में कोई भी व्यक्ति अमर नहीं है, शरीर की बात हो रही है, आत्मा की नहीं, प्रत्येक व्यक्ति की देह नियम से छूटेगी, तो तकलीफ भी होगी तो उस तकलीफ से बचने का उपाय क्या है? जब हमारा मोबाइल कहीं छूट जाता है या कोई व्यक्ति हमें छोड़कर चला जाता है, तब बहुत तकलीफ होती है, फिर जब सबका ही एक साथ वियोग हो जाएगा, सब कुछ एक साथ छोड़कर जाना होगा, तब तकलीफ कितनी होगी? आप सोच कर देखिए।

यह तकलीफ आपको आपके मोह-राग के अनुपात से होगी, यह सल्लेखना उस पीड़ा-तकलीफ को कम करने वाली है, जैन-अजैन, हिंदू-मुस्लिम सभी आत्माएँ हैं, सल्लेखना की चर्चा प्रत्येक मरने वाले व्यक्ति के लिए उपयोगी है।

यदि सल्लेखना पूर्व के सारे कर्मों को नष्ट करने में समर्थ है, तब जीवन भर धर्म क्यों करें, अंत समय में हमारा कल्याण-उद्धार कर देना, अंतिम समय में हमें धर्म सुना देना, हमारा तो कल्याण हो जाएगा, लोगों के मन में ऐसी ही बात आती है कि सारे कर्म नष्ट हो जाएँगे। अंत भला सो सब भला। हमने अंत में सब कुछ छोड़ दिया था, हम युवा अवस्था में धर्म क्यों करें।

युवा शांति से सोचते होंगे कि जब बुढ़ापा आएगा तब करेंगे, यह कोई उम्र थोड़े ही है। आपसे एक प्रश्न है कि बताइए हम डॉक्टर के पास कब जाएँ? नवंबर में या फरवरी में, मार्च में या अप्रैल में? आप कहोगे जब बीमारी हो तब जाना चाहिए।

तो सुनिए यह धर्म-आराधना हमारे दुःखों, तकलीफों को मिटा देता है, यह हमारे संकटों-पीड़ाओं को मिटा देता है, यह मिथ्यात्व की तकलीफ को मिटा देता है, मोह की तकलीफ को कम कर देता है, यदि आप मिथ्यात्व विभाव भावों से दुःखी हैं, तब आपको अभी धर्म की जरूरत है, आप यदि टेंशन-डिप्रेशन का शिकार हैं, आपके यदि परिवार ऑफिस में झगड़े होते हैं, किसी से बनती नहीं है, तब आपको धर्म की जरूरत है। धर्म शांति प्रदान करता है, इसलिए कब करें? कब सुने? कब पढ़ें? इसका उत्तर यही है कि -

क्योंकि हम हर समय दुःखी हैं, जिसके हृदय में धर्म, तत्त्वज्ञान नहीं है, वह व्यक्ति दुःखी है, पीड़ित है, यहाँ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की टीका में पण्डित टोडरमलजी ने प्रश्न उठाया है और उसका उत्तर दिया है, ऐसी सोच वाले के समाधिमरण कभी नहीं होगा, जिसका जीवन समाधि में

बीतता है, उसका मरण समाधिमय होता है। जीवन समाधि के अंदर बीतना चाहिए, शांत परिणाम का नाम समाधि है, नि:कषाय भाव का नाम समाधि है।

चंद्रगुप्त का स्वप्न है कि रथ में बछड़े जुते हुए देखे अर्थात् पंचम काल में यदि धर्म होगा तो बाल्यावस्था में होगा, युवा अवस्था में होगा, बुढ़ापे में यदि कोई धर्म करना चाहे तो हजारों में, लाखों में कोई एक व्यक्ति ऐसा होगा, जिसने जीवन भर धर्म नहीं किया और अंतिम समय में धर्म कर लेगा, बहुत कठिन काम है इसलिए आपकी जो भी उम्र है, उसी में प्रारंभ कर दीजिए, आज से ही शुरू कर दीजिए।

जो जीव अपनी पूर्व अवस्था में धर्म से विमुख रहे हैं अर्थात् जिन्होंने तत्त्वज्ञानपूर्वक व्रत-नियम आदि धर्म-आराधना नहीं की है, जिन्होंने युवावस्था में जीवनभर कभी भी व्रत नियम आदि नहीं लिए हैं, न पढ़ा है न पढ़ाया है, न सुना है न सुनाया है, धर्म करने वालों की मजाक उड़ाई है। वे जीव अनंत काल में धर्म सम्मुख अर्थात् संन्यास युक्त कभी नहीं हो सकते।

धर्म और धर्मात्माओं की मजाक कभी मत बनाइए, वरना धर्म को तरसोगे, उसकी प्राप्ति दुर्लभ हो जाएगी, धर्म का मजाक बनाने वालों को प्यार से समझाइए, जो लोग जवानी की मस्ती में झूम रहे हैं कि यह धर्म तो निठल्ले लोगों का काम है, मुझे इसकी जरूरत नहीं है। जो अंधे हो रहे हैं, होश खो बैठे हैं, मदहोश हो गए हैं, यदि अवसर मिले तो ऐसे लोगों को समझाना। उन्हें प्यार से समझाना कि जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं है, वैराग्य प्रसंग के दर्शन करना, न्यूज़पेपर में वैराग्य प्रसंग के दर्शन होते हैं।

जीवन भर जिस व्यक्ति ने भेदविज्ञान की बातें सुनी हैं, समझी हैं, अनुभव की हैं, जिसका समय आराधना में बीता है, अंत समय में उसे भेद-विज्ञान याद आएगा; क्योंकि उसने जीवन उसी में जिया है,

जिंदगी भर धर्म पढ़ने वालों के अंत समय में कितना ही बड़ा संकट क्यों ना आ जाए उसकी बुद्धि गुण-दोष का विचार करती है, जिसकी बुद्धि लंबे समय से अभ्यास में आई हुई है।

वस्त्र पहले से ही उज्ज्वल हो उस पर मनपसंद रंग चढ़ सकता है; किंतु यदि वस्त्र पहले से ही मैला हो तो उस पर कभी भी रंग नहीं चढ़ सकता, इसलिए समाधिमरण वही धारण कर सकता है, जो प्रथम अवस्था से ही धर्म की आराधना में बराबर सावधान रहा हो।

यह बात वही समझेगा, जिसने जीवन धर्म में बिताया हो, जिसने जीवन पाप में बिताया हो, उसके समझ नहीं आएगी, यदि धर्मात्मा आकर धर्म सुनावे तब भी उसके चित्त में आकुलता ही रहेगी, वह कहेगा – मैं मर नहीं रहा हूँ यह क्यों सुनाना चालू कर दिया है? बंद करो यह बकवास। चित्त जिसका मैला हो उस पर कुछ भी नहीं चढ़ सकता है; हृदय यदि पवित्र है, निर्मल है, तत्त्वज्ञान से भीगा हुआ है, तो धर्म की चर्चा काम आएगी। जिसने जीवन में द्रव्य, तत्त्व, आत्मा-परमात्मा, जीव-अजीव शब्द ही नहीं सुने हों, वह क्या धर्म करेगा?

युवा अवस्था में, पूर्व अवस्था में, बचपन से, पहले से ही जो व्यक्ति धर्म-आराधना करता रहा हो, वही व्यक्ति समाधि कर पाएगा।

जीवन भर कुछ नहीं किया है और समाधि की भावना रखते हैं और जब ऐसे लोगों को समझाते हैं कि जीव कभी नहीं मरता है, तब वे सोचते हैं, पता नहीं कौन से जीव की बात कर रहे हैं, मैं तो मरने वाला हूँ, तुम आत्मा चैतन्य हो तुममें अनंत शक्तियाँ हैं, तब यह चैतन्य क्या होता है? यह शक्तियाँ क्या होती हैं? जिसने जीवन में कभी सुना ही नहीं, वह कहेगा कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं, अजर-अमर, अविनाशी कौन है?

यदि आपको सच में यह महसूस होता है कि आपको यह तत्त्वज्ञान बचपन में क्यों नहीं मिल गया, तब आपकी जिम्मेदारी है कि आप इसे

अगली पीढ़ी में ट्रांसफर करें, अन्यथा वे ही बच्चे आज से 20 साल बाद अफसोस मानेंगे कि काश यह धर्म हमें पहले मिल गया होता। आप रोते हो कि आपको अभी मिल गया, ऑनलाइन के कारण मिल गया, पीड़ा होती है। क्या आप चाहते हैं कि आपके बच्चों को पीड़ा हो? वे भी तत्वज्ञान का आनंद लें, उन्हें बचपन में ही तत्त्वज्ञान मिल जाए, आपको लगता है कि आपको खजाना मिल गया है, तब आप अपने बच्चों को यह ज़रूर प्रदान कीजिए। यदि आप उन्हें आज समझाएँगे तो वह आपके बुढ़ापे का सहारा बनेंगे, सहारे का मतलब यह नहीं है कि आपके पैर दबाएँगे, वह आपके परिणाम को बिगड़ने नहीं देंगे, उसे सँभालेंगे।

यदि हमारे बच्चों का एक्सीडेंट हो जाए तो क्या आप नहीं चाहते हैं कि वह समाधिपूर्वक मरण करे। 10-12 साल का बच्चा सामान लेने गया और रोड क्रॉस करते हुए अचानक दुर्घटना हो गई। उसे कौन सुनाएगा, कौन उसके परिणामों को सँभालेगा? यदि उसके पास तत्त्वज्ञान के संस्कार होंगे तो जीवन को सफल कर जाएगा, दो वाक्य भी तत्त्वज्ञान के याद आ गए तो जीवन सफल हो जाएगा, बच्चों को समझाइए। यदि बच्चे नहीं समझ पा रहे हैं, तब उनमें गलती बच्चों की भी है और हमारी भी है - दोनों बातें हो सकती हैं। डराना और धमकाना किसी समस्या का इलाज नहीं है। आप दबाकर किसी को समझाना चाहेंगे, नहीं समझेगा, प्यार से समझाइए। बेटा! मैं तेरी बात सुनता हूँ, तू मेरी बात सुन, धीरे-धीरे उसे रस लग जाएगा, बस रस ही तो लगाना है, ज्यादा छोटे बच्चे हों तो उन्हें जबरदस्ती भी लगाया जाता है, यदि बड़े हों तो जबरदस्ती नहीं की जा सकती है। एक बार यदि तत्त्वज्ञान का रस लग गया फिर अपने आप आएगा, इसका आनंद कुछ अलग ही प्रकार का है। विदेश में सभा में बहुत युवा साथी आते हैं, विद्यालयों-महाविद्यालयों में जाकर देखेंगे तो संस्कारित बच्चे मिलेंगे।

इन बच्चों और पाठशालाओं में पढ़ने वाले बच्चों को छोड़ दें तो देश का हाल खराब है, फिर आपका काम है बच्चों को समझाइए। उन्हें विद्यालयों में पढ़ने भेजिए, प्रेरणा दीजिए, एक बार रस लग गया तो काम हो जाएगा।

किसी स्थान पर ऐसा भी देखने में आता है कि जिसने आजीवन धर्म-सेवन में चित्त नहीं लगाया हो। कई बुजुर्ग साथी मेरे सामने आकर के कहते हैं कि पण्डितजी मैंने जीवन भर धर्म नहीं सुना, जीवन खराब कर दिया, ऐसे ही निकल गया, यह धर्म तो तब भी था। अब उम्र 70 साल की हो गई है, अब क्या करें? कई ऐसे भी मिल जाएँगे कि जिन्होंने अंत समय में अपना उद्धार कर लिया, पर बुढ़ापे का इंतजार मत करना। कोई ठिकाना नहीं है, जब जागो तभी सवेरा है, बचपन हो या 55 हो, 8 वर्ष की उम्र हो या 60 वर्ष की उम्र हो कोई, फर्क नहीं पड़ता। 8 साल का बच्चा भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है और 60 साल का व्यक्ति भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है।

जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाएगी अवसर कम होते जाएँगे; क्योंकि दिलो-दिमाग में जंजाल बढ़ते जाएँगे। बच्चे का दिमाग ओपन माइंड होता है, साफ स्लेट है, जो लिखते हैं उसके दिमाग पर वह छपता चला जाता है। उम्र बढ़ती है तो लौकिक पढ़ाई का भार आ जाता है और दिमाग यार-दोस्तों में चला जाता है।

आगे घूमने-फिरने में, मौज-मस्ती में, कमाने में, घर-गृहस्थी में, पत्नी में उलझ जाता है। फुर्सत कहाँ है, उम्र बढ़ रही है, जंजाल बढ़ रहे हैं और कुछ किया ही नहीं है। ससुराल में कुछ विवाद हो गया, रिश्तेदारों में उलझे रहते हैं। मंदिर, समाज, परिवार, गाड़ी, बँगला, जंजाल बढ़ता चला जाएगा। जंजाल और बढ़ जाए उससे पहले दिमाग में अच्छी बातें डाल लो। अभी उम्र 55-65 की हुई है, मरे नहीं हो जिंदा हो तो धर्म कर लो।

संन्यास लेकर स्वर्ग आदि में चला गया – ऐसा पुराणों में लिखा मिल सकता है, किंतु वह काकतालीयन्याय जैसा कठिन है, ताड़ वृक्ष के फल टूट कर बैठे हुए व्यक्ति के मुख में गिर जाना, जितना कठिन है।

एक व्यक्ति पेड़ के नीचे बैठा हुआ था और अचानक पेड़ पर फल के ऊपर कौवा आकर बैठा और फल गिरकर व्यक्ति के मुँह में आ गया। बुढ़ापे में धर्म करना इतना दुर्लभ है, अंत में समाधिमरण लेने वाला व्यक्ति भी जीवन सफल कर सकता है, पर जीवन सफल करना काकतालीयन्याय जैसा है, हर बुजुर्ग व्यक्ति नहीं कर पाएगा।

बुढ़ापे में कोई नहीं सुनता जो अभी सुनते दिखाई दे रहे हैं, उन्हें या तो बचपन के संस्कार होंगे या युवावस्था में सुना होगा, यदि अभी सुनना शुरू किया तो विशेष पुरुषार्थी होंगे; क्योंकि लोग रिटायरमेंट के बाद नए काम तलाशते हैं। जिंदगी भर कहते हैं कि रिटायरमेंट के बाद धर्म करेंगे, परन्तु रिटायरमेंट होने पर दूसरी जॉब तलाशते हैं, ताश-पत्ती खेलते हैं, सरकार ने वापस बुला लिया तो फिर चले गए। जिंदगी बहुत दुर्लभ है, कभी भी चली जाएगी। यह चेतन आत्मा कभी भी छूमंतर हो जाएगा। आज के समय में बुढ़ापा नहीं आता, लोग जवानी में मर रहे हैं। जब काम करने की कोई उम्र नहीं होती फिर धर्म करने की क्यों? हर समय धर्म करो पत्नी को, पति को, माता-पिता को, बच्चों को धर्म से जोड़ो – यह मनुष्य भव, जीवन सफल करने के लिए मिला है।

इसलिए वीतराग, सर्वज्ञ के वचनों में जिसे श्रद्धा है, उसे ऐसी शंका को अपने चित्त में कदापि स्थान नहीं देना चाहिए कि बुढ़ापे में धर्मध्यान कर लेंगे, सल्लेखना तो अंत में होगी तो अंत में कर लेंगे। यदि सर्वज्ञ की बातों में भरोसा है, तब अपने जीवन को राग में मत उलझाइये। धन के पीछे मत भागो, करोड़पति को रोडपति होने में देर नहीं लगती, एक झटका आता है और रोड पर आ जाता है। किस बात का अभिमान करें और किसके पीछे भागते रहें। सहयोगों की चाह से सहयोग नहीं आते।

इकट्ठे होते नहीं हैं। जब तक रहना है रहेंगे फिर छोड़कर चले जाएँगे। इन पर हमारी चलती नहीं है। जिन पर चलती नहीं है उन पर चलाने का प्रयत्न मत करो। पत्थरों से सिर फोड़ने जैसी हालत होगी। बुढ़ापा नहीं आया तब क्या कर लोगे?

कहीं आतंकवादी हमला हुआ और हर आने-जाने वाले की चेकिंग चल रही थी। अधिकारी लोग बैठे हुए थे। पुलिस वाले चेक कर रहे थे। एक गाड़ी में बच्चे आए तो बोले कि बच्चे हैं, यह क्या कर लेंगे जाने दो, बुजुर्गों की गाड़ी को भी जाने दिया, फिर महिलाओं की गाड़ी आई तो बोले कि यह क्या बिगाड़ लेंगी, जाने दो। फिर एक गाड़ी आई उसमें आतंकवादी बंदूक लिए बैठे थे और पुलिस वाले बोले कि साहब-साहब जाने दो, हम इनका क्या बिगाड़ लेंगे। जवानी में किया नहीं, बुढ़ापे में करने लायक रहोगे नहीं, कुछ हासिल नहीं होगा। एक वक्त में आँखों से दिखाई, कानों से सुनाई नहीं देगा। ऐसी हालत में क्या ही धर्म करोगे। सरकार ने आपको रिटायर्ड कर दिया। आप काम करने लायक बचे नहीं हैं। शरीर चलता नहीं है, उठते-बैठते भगवान याद आते हैं तब आप धर्म करोगे? जब जीवन भर कुछ सीखा नहीं है अब सीखने की उम्र ही नहीं है अब क्या सीखोगे, क्या पढ़ोगे, क्या समझोगे।

पूरी जिंदगी बर्बाद हो गई। बुजुर्गों को हतोत्साहित नहीं कर रहे हैं। आप भी पुरुषार्थी हो सकते हैं।

पण्डित दौलतरामजी छहढाला में कहते हैं -

जब लो ना रोग जरा गहे तब लो झटिति निज हित करो।।

बुढ़ापा आने के पहले हित कर लो। ये भव सुधारने का प्रसंग है। देहांत के समय में तुमको न भूल जाऊँ। अरे देहांत तो आज, कल, कभी भी हो सकता है। हमें नहीं पता कि हमारे पास कितना समय बचा है। दिवाली, होली का समय तो बता सकते हो कि कितना समय बचा है। पर दिवाला आने में कितना समय बचा है कैसे बताओगे। इंद्रियों

का दिवाला आँख, नाक, कान का दिवाला। बुलावा कभी भी आ सकता है। पर भव में कब जाना है इसका ठिकाना नहीं है, इसलिए पर भव की तैयारी ही समाधिमरण है। हमने तो जीवन भर उस माल की पैकिंग की है जो छोड़कर जाना है, आज उसकी पैकिंग कर लो जो साथ में जाना है।

जब आप फ्लाइट में सफर करते हो तब, माचिस, लाइटर नहीं ले जाते। कैंची-चाकू नहीं ले जाते, नुकसान पहुँचाने वाली चीजें नहीं ले जा सकते, जब वे चीजें फ्लाइट में नहीं जा सकतीं तब जो परभव में साथ नहीं जा सकतीं उसे क्यों जोड़ने में लगे हो। यह सल्लेखना साथ में जाएगी। ये ब्रिज है जो दोनों भवों को जोड़ता है। इस भव का धर्म अगले भव तक पहुँचा देता है। तत्त्वज्ञान की चर्चा जीवन बदल देती है। हमें अपना जीवन सुधारना है। ये मेरे लिए है। अब मैं अपने आपके लिए जोडूँगा और अगले भव में लेकर चला जाऊँगा। करोड़ रुपये मिले हों तब तुरंत लेते हैं। यह धर्म अभी मिल रहा है ज्ञायक मिल रहा है अभी ले लो।

अब अंत समय में कौन-से स्थान का चुनाव करना चाहिए उसकी चर्चा करने वाले हैं। जिंदगी कैसे जीना है और मरना है तो कैसे मरना है - ये हमें सिखा रहे हैं। धर्म बुढ़ापे में नहीं जवानी में करना चाहिए। बुढ़ापे में धर्म करना आसान नहीं होता। वृद्धावस्था का इंतजार नहीं करो, कुछ हो नहीं पाएगा जितना समय बचा है वह सब आराधना-धर्मध्यान में बिताएँगे। उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भावना भाओ, सल्लेखना से सारे पापों का नाश हो जाता है।

एसो पंच णामोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलम्।।

जब सारे पाप नष्ट हो जाएँगे तब पाप नष्ट करने से पहले पाप कर तो लो, हमने तो पाप किया ही नहीं है? खूब खा-पी लेने दो, पाप लगेगा

तो कोई बात नहीं। अंत में सल्लेखना करके धो लेंगे। ऐसी भावना मत भाइए। पापी जीवों को अन्त में सल्लेखना लेने का भी भाव नहीं आता है। अंत समय में आप सुधर जाएँगे, यह बहुत दुर्लभ है। जीवन नहीं सुधरेगा तो मरण नहीं सुधर पाएगा। सल्लेखना की विधि जीवन सुधारने की विधि है। जीवन सुधरता है तो मरण सुधर जाता है। अंत समय में बदलना काकतालीयन्याय जैसा है।

सल्लेखना एकांत में होती है, जहाँ जिन मंदिर है, धर्म-आराधना के साधन हैं, स्वाध्याय, धर्म-आराधना चलती हो। सोनागिरी, द्रोणगिरी, देवलाली आदि चले जाओ, जो शहरों से दूर बने हुए हैं। शहरों में राग-रंग में उलझे रहोगे। शहरों में घूमना-फिरना, बाजार दिखेगा, चकाचौंध दिखेगी। जंगल होना चाहिए। गाँव जैसा परिवेश जहाँ पर हो, मुक्तागिरी आदि। जहाँ जा रहे हैं वहाँ धार्मिक माहौल, स्वाध्याय मिलना चाहिए। घर से मोह छूटना चाहिए। सल्लेखना अकेले में, एकांत में ली जाती है।

समाधिमरण के इच्छुक पुरुष जहाँ तक बन सके (हमेशा के लिए नहीं कह रहे हैं) वहाँ तक जिनेश्वर भगवान की जन्म कल्याणकादिक से सुशोभित तीर्थभूमियों का आश्रय ग्रहण करें। यदि ऐसा न बन सके तो मंदिर, संयमीजनों के आश्रय में रहें। बाल ब्र. रायमलजी (ज्ञानानन्द श्रावकाचार) पण्डित टोडरमलजी को तलाशते हुए जयपुर आए थे। पण्डित टोडरमलजी का नाम सुना था। वे जयपुर में मिले नहीं। ढूँढ़ते हुए जयपुर के पास सिंघाणा चले गए। उनके साथ बैठ करके खूब अभ्यास किया। ज्ञानी, धर्मात्मा, संयमीजनों के समागम में सत्संगति की बात है।

जिस जगह माहौल बना हुआ हो। आत्मार्थियों का ओल्ड एज होम बना हो। अमेरिका में ओरलैण्डों में शांतिनिकेतन नाम से एक जगह विकसित की है, सारे साधर्मी लोग वहाँ जाकर धर्माराधना करते हैं। जहाँ मोह बढ़े नहीं घटे, जहाँ भेदविज्ञान की धारा निरंतर बहती है।

जहाँ कषाय और राग मंद-मंदतर और मंदतम हो जावे। जहाँ आप अपने आप से एकांत में मिल सको। सल्लेखना अपने से अपने में मिलन का नाम है। हम अपने आप से मिलें। अपने आप में अंदर स्वयं से मिलने चले जाएँ। कुछ लोग कह सकते हैं कि क्या सल्लेखना घर छोड़कर होती है? आप तो घर छुड़ाने की बात करते हैं? ये बात आचार्यदेव एवं टोडरमलजी कह रहे हैं, भगवती आराधना में लिखी है। रत्नकरण्ड श्रावकाचारजी में पण्डित सदासुखदासजी ने लिखा है, चरणानुयोग के ग्रन्थों में इसका वर्णन आया है, हमें इसका अनुसरण करना है। यदि ऐसा न बन सके तो मंदिर अथवा संयमी जनों के आश्रय में रहें, यदि हमें घर छोड़कर जाना है तो उसकी विधि बता रहे हैं। घर, परिवार, पत्नी, पोते, पोती सब होंगे - ऐसा तो है नहीं कि आप 30-40 की उम्र में संन्यास ले रहे होंगे। आपने ये निश्चित कर रखा होगा कि इस उम्र में सल्लेखना (संन्यास अर्थात् निवृत्ति) लेंगे।

संन्यास अर्थात् अब हम घर के प्रपंचों में नहीं उलझेंगे। अब हमें पोते-पोतियों के विवाह में नहीं उलझना है। सल्लेखना अर्थात् तुम मरो अथवा जिओ हमें उससे कोई मतलब नहीं, हमें तो अपनी आराधना में लगना है। जैसे आप व्यापार से निवृत्ति ले लेते हैं, वैसे ही आत्मार्थी व्यक्ति घर-गृहस्थी से निवृत्ति ले लेते हैं। यह तो निवृत्ति का मार्ग है। संन्यास के इच्छुक तो तीर्थयात्रा करते समय सभी से क्षमा-याचना करें तथा स्वयं भी मन-वचन-कायपूर्वक सभी को क्षमा करें।

शत्रु यदि कोई हो, संतुष्ट उसको कर दूँ।
समता का भाव रखकर, सबसे क्षमा कराऊँ।।

यदि आपका घर छोड़कर जाना संभव हो सके, यदि नहीं बने तो घर में ही सल्लेखना कर लेनी चाहिए, घर छोड़कर जाना जरूरी नहीं है। यदि आप इतने परिपक्व हैं कि बाल-बच्चों के बीच जल से भिन्न कमल की तरह रह सकते हैं तो कोई बात नहीं है। यदि आप छोड़कर नहीं जा

रहे हैं और मोह भी नहीं टूट रहा है फिर तो छोड़कर जाना ही ज्यादा उचित है और छोड़कर चले जाने पर भी यदि हमें मोह सताता हो तो नहीं छोड़ना ज्यादा उचित है। बिना बैलेंस के कैसे काम चलेगा, यह व्यक्तिगत चीज है, हर व्यक्ति का अपने ऊपर निर्भर करता है। यह चौथे गुणस्थानवर्ती की बात नहीं है। पंचम गुणस्थानवर्ती व्यक्ति के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत का पालन करने वाला होने से तथा निवृत्तिमय जीवन तो पहले से होता है। अब तो अंत समय दिखता है तो उसकी तैयारी है।

बालचन्दजी पाटनी, तखतराजजी मोथा की अत्यंत वृद्धावस्था होने से शारीरिक स्थिति ठीक नहीं थी, तब भी कोलकाता से जयपुर जाकर शिविर अटेंड करते थे। किसी ने कहा कि आप ऐसी स्थिति में शिविर में कैसे जाएँगे? तो उन्होंने कहा कि क्या जयपुर में श्मशान घाट नहीं है? तत्त्व के लिए समर्पित जीवन है। आराधना को समर्पित जीवन है। अनेक विद्वानों से आत्मकल्याण का मार्ग सुनने का अवसर, भेदविज्ञान सुनने का अवसर है। यदि ऐसी बातें सुनते हुए जीवन पूरा हो तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है। यहाँ के श्मशान में जलाओ या वहाँ के में जलाओ, ये शरीर तो पहले से ही मरा है वो तो जलेगा ही। यहाँ छूटनी है सो वहाँ छूट जाएगी, कितना समर्पण कितनी भावनाएँ, हमें तो प्रेरणास्रोत जैसे दिखते हैं। यहाँ जले या वहाँ क्या फर्क पड़ता है। लोग रोने लगते हैं कि बच्चे को देखा नहीं वह आ जाता तो ठीक रहता।

अरे भाई! तेरा मरण बिगड़ जाएगा यदि अंत समय तक जीवन सुधारते रहे तो मरण भी सुधर जाएगा। ऐसी अद्भुत बातें पण्डित टोडरमलजी ने लिखी हैं। ब्र. रायमलजी ने लिखा कि "**मल्लजी लिखै हैं और हम वाचै हैं**" उन्हें रोजाना इंतजार रहता था कि पण्डित टोडरमलजी ने आज क्या लिखा। जैसे छोटे दादा लिखते हैं और हम पूछते हैं कि दादा आज क्या लिखा? फिर हम पढ़ते हैं। बड़े दादा से भी

पूछ कर उनका लिखा हुआ पढ़ते थे। यह पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की टीका पूरी नहीं हुई और जीवन पूरा हो गया। वे लिखते होंगे और बड़े मंदिर में लाते होंगे। जहाँ पण्डितजी व्याख्यान करते थे। रायमलजी, दीवान रतनचंदजी आदि लोग उनको सुनने का इंतजार करते थे। मोक्षमार्ग प्रकाशक की प्रस्तावना में लिखा है कि दिन भर में 1000-1200 लोग टोडरमलजी के सान्निध्य में आराधना करते थे।

हमें तो आश्चर्य होता है कि कैसे 1000-1200 लोग उन्हें सुनते होंगे? पण्डितजी ने इतनी उज्ज्वल भावना से ये पंक्तियाँ लिखीं तो शब्द भी असर करते हैं। आराधक व्यक्तियों के माध्यम से हुई प्रभावना सच में उत्कृष्ट होती है। जिनका जीवन आराधनामय होता है उनकी वाणी अंतर से निकलती है। उनकी लेखनी के एक-एक शब्द अंदर में अनुभव से भीगे हुए होते हैं। एक-एक वाक्य में उनकी भावनाएँ, उनका अंतरंग झलकता है। क्षेत्र का अपना प्रभाव होता है। मंदिर, तीर्थक्षेत्र, पुण्यभूमियों में बैठकर अलग भाव होते हैं। जिस जगह पर बैठकर लोगों ने धर्म-आराधना की हो उस जगह पर बैठने मात्र से आपके परिणाम उज्ज्वल हो जाते हैं।

राम-रावण का प्रसंग आता है। रावण ने सीता का हरण किया और सीताजी मान नहीं रही हैं। मंदोदरी रावण को चिंतित देखती है। मंदोदरी रावण से बोली - तुम राम का वेश क्यों नहीं धारण करते हो? रावण बोला - यह तो मैं कर चुका हूँ; लेकिन जब राम का वेश बनाता हूँ तब परस्त्री सेवन का भाव मेरे मन में आता ही नहीं है।

पहले सिंहासन-बत्तीसी नाम का सीरियल आता था। उसमें एक बच्चा टीले पर बैठता था और फैसले सुनाया करता था। खेल-खेल में बच्चा फैसले करता। इस बात की बच्चों ने घर-घर में खबर पहुँचा दी और लोग आने लगे, भीड़ लगने लगी। जब उस टीले की खुदाई हुई तब नीचे से विक्रमादित्य का सिंहासन निकला।

जब वह छोटा-सा बच्चा विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था तो ऐसी बात होती थी। क्षेत्र का निमित्त-नैमित्तिक संबंध जैसा है। जहाँ गुरुदेवश्री ने बैठ करके आराधना की, जहाँ प्रवचन किए। पण्डित टोडरमलजी ने जहाँ बैठकर आराधना की, जहाँ 300 सालों से प्रवचन बंद नहीं हुए। वहाँ की पौद्गलिक वर्गणाएँ भी इस तरह की होंगी। जब दवाई खाने से सिर का दर्द मिट सकता है, ये पौद्गलिक वर्गणाएँ इसी तरह काम करती हैं। आपके होटल के रूम में वैसे परिणाम नहीं हो सकते हैं जैसे परिणाम किसी तीर्थस्थानादि, साधनास्थली पर बैठकर होंगे। ये आगम के वाक्य हैं जहाँ बैठकर धर्मात्माओं ने आराधना की हो, त्याग किया हो, जहाँ संयमी का विचरण हुआ हो। बिहार, शिखरजी आदि में सल्लेखना के परिणाम बनते हैं।

संन्यासी, तीर्थक्षेत्र पर जाते समय (यदि नहीं जा रहे हैं तो अपने घर पर ही आराधना कर सकते हो। आप परिपक्वता को इतना बढ़ा लीजिए की जाने की जरूरत न पड़े) स्वयं भी मन-वचन-कायपूर्वक सबको क्षमा करें और सबसे क्षमा माँगें। अंत समय में सबको क्षमा करने वाला संसार का पारगामी होता है और बैरविरोध रखने वाला अर्थात् क्षमा न करने वाला अनंत संसारी होता है।

अंत समय में जो आपके साथ था वह आपके साथ जाएगा। इस जन्म के अंतिम समय में और अगले जन्म के प्रारंभिक समय में अंतर नहीं है। मात्र विग्रह गति का 1,2,3 समय का अंतर मात्र है। चौथे समय में जन्म हो ही जाता है।

सेकण्ड के असंख्यातवें भाग का नाम समय है। आपको तीन दिन पहले की बातें याद हैं। जब तीन दिन पहले की बातें आपको याद रह सकती हैं, तब मरण के 3 मिनट बाद तक की याद क्यों नहीं रह सकती हैं? ज्ञान ही तो है, जिसका स्टोरेज आत्मा में ही तो होता है। सैनी पंचेद्रिय होना चाहिए। अंत समय में यदि आप वैराग्यभाव,

अकषायीभाव लेकर जाएँगे, बैर-विरोध, मन-मुटाव सब छोड़ देंगे तो आपका संसार अल्प रह जाएगा और वैर-विरोध रखने वाले का जन्म-जन्मांतरों तक चलेगा; कमठ जैसा। रात्रि को आप नाराज होकर न सोएँ। सोने से पहले अपने झगड़े निपटा लें।

पति-पत्नी, सास-बहू, पिता-पुत्र दोनों झगड़ा निपटा लें। यदि निद्रा द्वेष के साथ व्यतीत हुई है तो वह द्वेष का परिणाम आपकी धारणा ज्ञान तक चला गया और धारणा में गया द्वेष जन्म-जन्मांतरों तक तकलीफ देने में कारण बन सकता है। रात्रि में यदि मरण हो गया, तब क्या होगा? रात नहीं फिरनी चाहिए। कुछ भी क्यों ना हुआ हो। अगले दिन फिर नई शुरुआत करें। रात्रि में सोते समय और सुबह उठते ही णमोकार मंत्र पढ़ने की बात इसलिए ही तो करते हैं कि रात्रि भर आपके दिमाग में वह वस्तुस्वरूप का विचार चलता रहे। वह विचार जो आपके अवग्रह, ईहा, अवाय का विषय बना है, वह धारणा तक पहुँचे। धारणा में गई बातें स्मृति का विषय बनती हैं, धारणा में गई बातें याद रहती हैं। रात्रि में तत्त्वविचार, वस्तुस्वरूप का चिंतन करते-करते पता नहीं कब नींद आ गई, अब आपके अंतर में वह तत्त्व समा गया। सान्निध्य, समागम का फर्क पड़ता है। साथ में बैठने का, धारणा का बहुत फर्क पड़ता है।

अंत समय का अर्थ दिन का अंत भी तो होता है। अंत समय में क्षमा करो, बैर विरोध मत रखो, अंत अर्थात् क्षमावाणी, महीने का अंत, साल का अंत क्षमावाणी से होना चाहिए। साल भर का हिसाब, हर महीने हर तीन महीने में करते हैं, सप्ताह में करते हैं। पैसे भी हर दिन माँगते, लंबे समय तक रखते नहीं, वैसे ही बैर-विरोध भी लंबे समय तक रखना ही नहीं है। वरना वह काम बिगाड़ देगा।

क्षमाभाव न रखने वाला अनंत संसारी होता है।

संन्यासार्थी को पुत्र, स्त्री एवं कुटुंबीजनों से तथा सांसारिक संपदा आदि से सर्वथा मोह छोड़कर उत्तम साधन धर्मात्माओं की सहायता

लेनी चाहिए; क्योंकि साधर्मी व आचार्य की सहायता से अशुभ कर्म बाधा का कारण नहीं बन पाता। अशुभ कर्म आ जाए, परिस्थितियाँ प्रतिकूल आ जाएँ तो कोई बात नहीं, पर साधर्मियों को तो एकमात्र तत्त्व चर्चा ही चाहिए। आप हमसे मिलेंगे तो तत्वचर्चा ही तो करेंगे। इसीलिए संन्यास ले लो, घर में साधर्मी हैं तो घर मत छोड़िए, घर ही तीर्थस्थान है। बस वहीं तत्त्व का विचार, चिंतन, आराधना करनी चाहिए।

यदि अपनी आराधना को सफल करना चाहते हो तो सल्लेखना अंगीकार करो। अंत समय का इंतजार मत करो। पता नहीं अंत समय कब आ जाएगा। क्या परिस्थितियाँ बन जाएँगी। हमेशा तैयारी रखो, भावना भाओ। जाग्रत होकर आराधना करते रहो।

हमको कछु भय ना रे, जान लियो संसार।

मौत कभी भी आ जाए हमें डर नहीं है, हमें परवाह नहीं, चिंता नहीं है। हमें बुढ़ापा या बीमारियाँ आ करके घेर लेंगी, हमें इसकी परवाह नहीं है। जीवन पूरा हो जाएगा इसकी कभी परवाह नहीं है; क्योंकि मेरा जीवन पूरा होता नहीं है। अच्छा तो यही है अपनी जन्मभूमि छोड़ दो और तीर्थंकरों की जन्मभूमि में चले जाओ। लोगों से अपनी जन्मभूमि, अपना गाँव, कॉलोनी, घर नहीं छूटता है, छोड़ना भारी काम लगता है, कठिन लगता है।

एक बार आत्मतत्त्व की आराधना करके देखो। जिसने आत्मा का अवलंबन ले लिया, आत्मा के अक्षय, अपूर्व सुख की जिसे झलक मिल गई वह व्यक्ति सोचता है कि इससे दूर नहीं जाऊँ। जन्मस्थान से दूर चले जाएँ पर अपने मूल स्वभाव से दूर न जाएँ।

यहाँ अन्योन्याभाव, अत्यंताभाव की बात नहीं है। जब संस्कारों की चर्चा चलती है तब अन्योन्याभाव, अत्यंताभाव को नहीं देखा जाता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता–धर्ता नहीं है। अभी उसकी बात

मत करो, यहाँ निमित्तप्रधान कथन चल रहा है। जब मैं मरता ही नहीं तो फिर सल्लेखना की चर्चा क्यों हो रही है?

नहीं! मैं मरता हूँ। देह छूटती है। देह से छूटने को जिनवाणी में मरण की संज्ञा दी गई है। यहाँ जितने भी विचार किये जा रहे हैं ये सब पर्याय की अपेक्षा से किए जाने वाले विचार हैं।

तीर्थक्षेत्रों पर जाइए, यदि तीर्थक्षेत्र पर नहीं जा सकते हैं तब मंदिर चले जाएँ। यदि मंदिर नहीं जा पा रहे हैं तब घर में रहकर भी सल्लेखना ले सकते हैं। घर को आप समाधिस्थल बना लें, साधर्मियों का स्थल बना लें। घर-गृहस्थी के अंदर लोगों को आप इतना साथी बना लें कि अंत समय में वह आपके परिणाम को बिगाड़े नहीं।

एक रात भी बिना क्षमा-याचना के न निकले। यहाँ मात्र रात की बात नहीं है, जीवन घूम जाएगा पता नहीं, अब के बिछड़े कब मिलेंगे। कुंभ के मेले में बिछड़ा हुआ व्यक्ति 25-50 साल में कदाचित् मिल सकता है, लेकिन यह जीवन यदि एक बार छूट गया तो फिर पता नहीं कि करोड़ों वर्ष में मिलन होगा कि नहीं होगा। क्या हम सब इस जन्म के पहले कभी मिले थे। इसीलिए सबसे क्षमा माँगो और सबको क्षमा करो। संन्यास लेने वाले व्यक्ति ने पुत्र-पुत्री से, कुटुंबीजनों से सबसे नाता तोड़ दिया, अब किसी से भी नाता नहीं है। संसार की सारी संपदा का सर्वथा मोह छोड़कर, सल्लेखना में मोह छोड़ना सबसे महत्वपूर्ण है। यदि मोह नहीं छूटा तो सल्लेखना बिगड़ गई, यदि मोह छूट गया तो सल्लेखना सफल हो गई।

जीवन पूरा होने लगे और मोह हावी हो तो सल्लेखना बिगड़ गई और मोह हावी नहीं है तो सल्लेखना बराबर चल रही है। मोह छोड़कर निर्मोही निजात्मा का भजन करना चाहिए।

दुनिया से, पड़ोसियों से और शरीर से मोह तोड़ दो। द्रव्यकर्म भी तुम्हारा नहीं है भावकर्म भी तुम्हारा नहीं। संयोग, शरीर, द्रव्यकर्म,

भाव कर्म के बिना भी अंदर में भरा-पूरा आत्मतत्त्व अनंतगुणों, अनंत शक्तियों, संपदाओं से युक्त आत्मा इस देह रूपी मंदिर में ज्यों का त्यों बैठा हुआ है, उस आत्मा का भजन करना चाहिए।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे किसी की तो सहायता लेनी ही होती है तो साधक धर्मात्माओं की सहायता लेनी चाहिए, उनका समागम करो। साधर्मियों और आचार्य की सहायता से तत्त्वज्ञानियों, धर्माराधकों की सहायता से अशुभ कर्म यथेष्ट बाधा का कारण नहीं बन पाता है। आपने तो कह दिया कि तीर्थक्षेत्रादि पर चले जाओ; लेकिन तबीयत, परिस्थिति खराब हो जाएगी तो कौन सँभालेगा? दो-चार दिन तो सबको अच्छा लगता है, फिर कोई किसी को पसंद नहीं आता है। सुनो! यदि आपके पाप कर्म का उदय भी आएगा तो साधर्मी व्यक्ति उसमें कारण नहीं बनेगा, उसे सँभाल लेगा। आपके साथ निभाने में सहयोगी बन जाएगा।

व्रत के अतिचारों को साधर्मियों अथवा आचार्य के निकट प्रकट करके नि:शल्य होकर प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त आदि शास्त्रों में वर्णित विधियों से शोधन करना चाहिए।

व्रत के अतिचार लग रहे थे, किसी प्रकार का कोई दोष लग रहा था, तो उन दोषों को साधर्मियों के निकट प्रकट कर दीजिए। मेरे मन में ऐसा भाव आ गया, ऐसा हो गया। आचार्यों के सम्मुख, सल्लेखना करने वालों के सम्मुख प्रकट कर देना चाहिए और निःशल्य हो जाना चाहिए।

यदि मन में कुछ शल्य बनी रही तो सल्लेखना सही से नहीं हो पाएगी। त्यागी, व्रती के शल्य नहीं होती। माया, मिथ्या, निदान - ये तीन शल्य हैं। मर करके कहाँ जाऊँगा यह सब छूट जाएगा तो कहते हैं कि व्रती व्यक्ति अपने दिमाग में शल्य नहीं रखता है। प्रायश्चित्त आदि शास्त्रों में वर्णित विधियों से शोधन करना चाहिए। जब हमने सल्लेखना ली और अंत समय नजदीक आता जा रहा है तब पहला काम परिवार

से मोह को तोड़ना। साथ में रहते हैं तो बच्चों को खिलाने-पिलाने का मन होता है। कोई मेहमान आ जाता है, कोई मिलने वाला आ जाता है, कभी रिश्तेदार आ जाते हैं। दुनिया भर की झंझट होती है। गृहस्थी तो गृहस्थी है। कभी व्यापारी आ जाते हैं, कभी कोई आकर के बैठ जाता है। कभी किसी की मौत में, किसी की तबीयत खराब में जाना पड़ जाता है। आज किसी का जन्मदिन है, किसी की शादी है, किसी की वर्षगाँठ है। किसी का मकान का उद्घाटन है। कहीं पड़ोस में किसी के स्वर्गवास हो गया है।

तबीयत खराब हो गई, उनको लेकर जाओ। लूटने वाले बहुत हैं, आपका उपयोग आपकी पूँजी है, आपकी संपत्ति है, उसे सँभालिए, दुनिया भर में जंजाल बहुत हैं। बिजली बिल, ट्यूशन, स्कूल, रिश्तेदार सब झमेले लगे रहते हैं।

सल्लेखना वाले को सुख-शांति चाहिए, मैं निवृत्ति लेकर जा रहा हूँ, अब कोई जिए या मरे मुझे सूचना देने की जरूरत नहीं है।

बच्चा, पोता-पोती, बहू-सास, देवरानी-जेठानी जिसका जो होना हो सो होवे, हम तो अब चले।

हम तो चले निज देश।

अब कहीं और जाने की जरूरत नहीं है, सबसे क्षमा कराऊँ। किसी के प्रति बैरभाव नहीं है, किसी के प्रति शत्रुता, नाराजगी नहीं है।

अब किसी क्षेत्र पर चले जाएँ जहाँ खाने-रहने की व्यवस्था हो गई, अब अपनी आराधना करते रहते हैं। विद्वानों के प्रवचन होते हैं, शंका होती है तो उनसे पूछ लेते हैं, अंत समय में किसी प्रकार की शल्य नहीं रह जाए।

प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त शास्त्र में वर्णित विधियों से उनका भी निराकरण करें। सल्लेखना लेने वाले को सूतक-पातक नहीं लगता है, उसने सब छोड़ दिया है, व्रती है, उत्कृष्ट आराधना करने वाला है।

हम तो चले निज देश, स्वदेशी हो गए।

निर्मल भाव रूपी अमृत से सिंचित समाधिमरण के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ मस्तक रखें, यह सब विधान है। वैज्ञानिक लोग अच्छी नींद के लिए कहते हैं कि सोते समय आपका सिर दक्षिण दिशा में हो, तो नींद अच्छी आती है; लेकिन मरने वाले व्यक्ति की दिशा घुमा दी जाती है, उत्तर दिशा में कर देते हैं।

अंदर में निर्मल भाव अमृत की धारा बह रही है, इससे जिसका सिंचन हो गया। सल्लेखना के प्रकरण में इतना बारीकी से वर्णन होता है कि इतना तक पता चल जाता है कि इतना समय बचा है। मोटा-मोटा तो डॉक्टर भी बता ही देते हैं। होंठ, कंठ, नाखून, स्वर देख कर बता देते हैं। जो श्रावक महाव्रत की याचना करें तो निर्यापक आचार्य उसकी परिणामों की स्थिति को देखकर उसे महाव्रत देवें। महाव्रत ग्रहण में नग्न होना चाहिए।

भगवती आराधना से बात कर रहे हैं, सल्लेखना करने वाले आचार्य को निर्यापक आचार्य कह सकते हैं कि यदि वे उचित समझें, अंत समय की भावना देखें, परिणाम देखें, जागृत अवस्था देखें, उसका पिछला जीवन देखें तो महाव्रत देवें। बहुत सावधानी की बात है, बेचेत अवस्था में नहीं, होश नहीं था और कपड़े उतार दिए और बोले मुनि बन गए - ऐसा नहीं होता। वे जागृत थे, उन्हें होश था तब भी उनकी अनुमति थी क्या? वे लेना चाहते थे क्या? इसलिए कहा कि आचार्य निर्णय करें, इसका अनिर्णय से काम नहीं चलेगा। कौन व्यक्ति किस जगह लेटा है, कौन से बिस्तरों पर पड़ा है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

असली फर्क आपके परिणामों का पड़ता है, जीवन भर यदि परिणाम निर्मल रहे हैं, आचार-विचार निर्मल रहे हैं, पंचम गुणस्थान की साधक दशा यदि उनकी रही है। यदि उनके भावों में इतनी

उज्ज्वलता दिखती है कि मेरा जीवन तो मुनिदशा के बिना ही जा रहा है, मैं 11वीं प्रतिमा तक तो आ गया लेकिन मैं मुनि नहीं बन पाया। यदि योग्य परिणाम जाने तो आचार्य महाव्रत दिला सकते हैं, पर इसका मतलब है कि अणुव्रतों से महाव्रत दिलाया है।

मिथ्यात्व से महाव्रत की बात नहीं है। मिथ्यादृष्टियों के सच्ची सल्लेखना नहीं होती है। मिथ्यादृष्टि की तो शांत परिणाम रूप उपचार से सल्लेखना कह दी जाती है, व्रती हो, अणुव्रती हो, त्यागी हो, संयमी हो, पंचम गुणस्थानवर्ती हो, प्रतिमाधारी हो, परिणाम उज्ज्वल हो तब उसका भी निर्णय आचार्य करें कि ये लेने योग्य हैं कि नहीं। लेने वाले की सहमति जरूरी है, होश है नहीं और कपड़े उतार दिए। श्मशान में जाकर उतार देना वहाँ, उसमें कुछ दम नहीं है। ये बातें बहुत मायने रखती हैं, यह आगम की बातें हैं। चरणानुयोग की बातें हैं, यह शब्द पण्डित टोडरमलजी के हैं। हम तो चिट्ठी वाचने का काम कर रहे हैं।

आगे जो बात आ रही है, उसको देख करके तो मेरा स्वयं का चित्त आंदोलित है पर आगम के आगे नतमस्तक होना पड़ेगा। आर्यिका को भी अंत काल उपस्थित होने पर एकांत स्थान में वस्त्रों का त्याग करना उचित कहा गया है, आर्यिका को भी कहा है।

आचार्य कुन्दकुन्द अष्टपाहुड में कहते हैं कि स्त्रियों में स्वाभाविक लज्जा है, डर है, घबराहट है, वे निर्वस्त्र नहीं हो सकती है, वस्त्र त्याग उनके संभव नहीं है। यहाँ कह रहे हैं कि वे भी वस्त्र त्याग कर सकती हैं। इस पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि आर्यिकाओं के संघ अलग होते हैं उनमें पुरुष मुनिराज नहीं होते। आर्यिकाएँ, आर्यिकाओं के बीच में रहती हैं, दूसरी बात अंत समय की कर रहे हैं।

नग्न होकर उनका देहांत तो भले हो जाएगा, पर अंतिम संस्कार करने तो पुरुष ही जाएँगे, महिलाएँ तो नहीं जाएगी? भगवती आराधना में कहा है कि शरीर में थोड़ा कट लगा करके उसे ऐसे ही जंगल में छोड़

दिया जाता है। मुनिराजों को जमीन में गाढ़ सकते हैं, जला सकते हैं और खुले में भी छोड़ सकते हैं।

बड़े-बड़े संघ होते हैं, जंगल में जानवर खा जाते हैं, शरीर गल जाते हैं, देह सूख जाती है, जड़ शरीर है, जलाने में हिंसा बहुत होती है, शरीर में थोड़ा कट लगा देते हैं। मेरी नानी के देहावसान पर नानाजी ने कहा कि कट लगा दें। बाद में मुझे यह बात ख्याल में आई। यह दिगंबर मुनिराज का शरीर है और व्यंतरादिक देव कहीं भी कुछ खिलवाड़, मजाक कर सकते हैं, दूर से ही उसे खेल नाटक कर सकते हैं, क्रीड़ा कर सकते हैं, जैनत्व के विपरीत माहौल बना सकते हैं। जहाँ खून दिखता हो, छिन्न-भिन्न शरीर में वे कुछ नहीं कर सकते।

मुनिराज जंगल में विचरण कर रहे हैं, कौन निर्दोष लकड़ियाँ लाएगा, कौन व्यवस्था करेगा ? उनके शरीर को ऐसे ही जंगली जानवरों के लिए छोड़ देते हैं। स्त्रियों के शरीर को ऐसे ही छोड़ देने की बात सही नहीं लगती है; क्योंकि खोटी बुद्धि वाले कुछ भी बुरा कर सकते हैं। अंत समय में सल्लेखना के प्रकरण में वस्त्र त्याग करना कहा है और मरण के पश्चात् वापस वस्त्र ढक देते हैं, ऊपर से पहना देते हैं, इसमें कोई बाधा नहीं है फिर पुरुष वर्ग आए और अंतिम संस्कार को ले जाए।

जिनागम की बात पण्डित टोडरमलजी ने कही है, बाकी जैसी परिस्थितियाँ हों तो वह वहाँ देखना चाहिए कि क्या करना है क्या नहीं है। अंदर से मोह टूटना चाहिए। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण व तीन कषाय चौकड़ी का जब तक अंदर अभाव नहीं हो तब तक बाहर का त्याग करने से कुछ नहीं होने वाला है। तीन कषाय चौकड़ी के अभाव के बाद कपड़े उतारे जाते हैं।

कपड़े पहले उतरते हैं बाह्य परिग्रह पहले छूटता है, सातवाँ गुणस्थान बाद में होता है। मृत शरीर की कुछ कीमत नहीं है, दुनिया में शव पड़ा रहता है उसी पर नारियल चढ़ाते हैं, परिक्रमा करते हैं, चरणों

में धोक देते हैं। यह कौन है, जो था वह तो चला गया है। अब जो है, मिट्टी है जड़ है, जिससे हमारा संपर्क था वह तो चला गया।

पहले जैनियों में भी मृत शरीर को दफनाने की परम्परा थी, पहले अन्तिम-संस्कार में अग्निदाह नहीं किया जाता था, जलाने की अपेक्षा दफनाना अहिंसक पद्धति है। अभी 400-500 साल पहले से दाह-संस्कार जैनियों में शुरू हुआ है।

मुस्लिम शासकों के समय दो मूल बँटवारे किए गए और जैनियों से कहा कि हिंदू या मुस्लिम दो ही रहेंगे। दोनों में से एक में शामिल हो जाओ तो जैनियों ने हिंदुओं की तरफ जाना ज्यादा उचित समझा। हमारा समाज अहिंसक है।

उसके बाद हमें अपनी कुछ चीजें बदलनी पड़ीं। फिर शव को जलाया जाने लगा। अब विद्युत शवदाहगृह बनने लगे हैं और इलेक्ट्रिक मशीन से कम हिंसा होती है, लकड़ियों में तो त्रस हिंसा भी होती है। लंबे समय बाद यदि अंतिम संस्कार हो तो शरीर में भी जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, उसमें त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है।

संन्यास लेने के समय, समाधिमरण लेने के पूर्व की विधि के समय अनेक प्रकार के योग्य आहार दिखाकर भोजन करावे, यदि उसे अज्ञानतावश भोजन में आसक्त समझें (आसक्ति चेक करने को दिखाए थे) भोजन की बातें अंतरंग परिणामों को टटोलना के लिए कर रहे हैं, इसकी कहीं आसक्ति तो नहीं है।

पूछो कि 'बच्चों को बुलाएँ क्या?' यदि वह कहे कि 'हाँ बच्चों को बुलाओ, उसका तो मुँह देखे बिना काम नहीं चलेगा।' आसक्ति रहित व्यक्ति का उत्तर होता है - 'कौन किसका पुत्र।' फिर पूछें - 'हलवा बना है, खाओगे।' उत्तर होता है - 'कौन-सा भोजन?' यदि भोजन में आसक्ति समझे तो परमार्थ के ज्ञाता आचार्य उसे उत्तम प्रभावशाली व्याख्यान द्वारा समझाएँ।

पहले भोजन दिखाएँ। यदि लगे कि परिणाम भोजन, परिवार की तरफ लगे हैं तब समाधि बिगड़ जाएगी। तब आचार्य उपदेशदाता समाधिमरण करने वाले को समझाते हैं –

अब तक अगणित जड़ भोजन से प्रभु भूख ना तेरी शांत हुई।

'क्या-क्या नहीं खाया तूने, यह फूटा घड़ा है, कभी नहीं भरता। क्या समझाते हैं क्या करते हो सुंदर-सुंदर प्रसंग बतला रहे हैं आत्मा के शुद्ध अवलंबन की बात कही है। यह अंत मेरा अंत नहीं है, मेरा मरण नहीं होता, शरीर की प्रतिकूलता, शरीर की परिस्थिति मेरी नहीं है, देह का मरण होगा तो मेरा कुछ नहीं होगा।'

यह समाधिमरण का प्रकरण प्रत्येक आत्मार्थी के लिए उपयोगी है। आत्मा को जिस दिशा में जाना है जाएगा तो इस दिशा में ही आवर्त या सिर करना आदि, ऐसा क्यों विधान है, यदि मस्तक की तरह से निकले तो उत्तर दिशा की तरफ सिर करके लेटे। सामान्य जो व्यक्ति सो रहे हैं उन्हें तो दक्षिण दिशा में सिर करके सोने की प्रेरणा दी। यदि दक्षिण की तरफ मुख है और जैसे ही उठे तो आपका मुख उत्तर की तरफ हो गया, उत्तर दिशा में विदेह क्षेत्र में है, उठते ही आप ध्यान-साधना करेंगे। शायद ऐसी कल्पना रही होगी कि ऐसे भाव बने कि साक्षात श्री सीमन्धर स्वामी अथवा साक्षात विदेह क्षेत्र नजर आ रहा हो, दक्षिण में मुख करके सोए थे और उत्तर अभिमुख होकर उठे। अब मरणासन्न अवस्था है यदि दक्षिण अभिमुख होकर सोएगा अब उस सल्लेखना वाला व्यक्ति को उठाना तो है नहीं गलत दिशा में चला जाएगा। जीवन भर चाहे जिस भी दिशा में सिर करके सोए सल्लेखना के समय उत्तर अभिमुख होकर लेटना चाहिए।

अब अंत समय है। अब आचार्य निर्णय करेंगे कि इसकी भावना कैसी है। कहीं इसका चित्त भोजन में तो नहीं अटक गया है, कहीं शयन में, ठंड में तो नहीं अटक गया है, कहीं गर्मी में, हवा करो, नहीं, हवा से कुछ नहीं होता, यह समझाएँगे।

जिनागम की तीर्थंकर से हम तक आई हुई साक्षात परंपरा है, तीर्थंकर परमात्मा से गणधर, उनके बाद परंपराचार्य, फिर एक-एक आचार्य से विद्वानों तक और हम तक जो यह परंपरा आ गई है, सब एक सूत्र में बैठे हैं, अनंत ज्ञानियों का एकमत, एक विचार, एक चिंतन हुआ करता है, हर ज्ञानी के चिंतन में भेद-विज्ञान की धारा बहती है।

भोजन-शयन आदि में तो कहीं मन नहीं अटक गया, इसलिए भोजन दिखाते हैं। क्रिया मात्र रह जाए – ऐसा नहीं है। इन सब बातों को सुनकर के बहुत सारे लोग क्रियावान हो जाते हैं, क्रिया में ही उलझ जाते हैं। हमें क्रियाओं में न उलझ कर उसके पीछे के मर्म को समझना है।

पण्डित टोडरमलजी ने लिखा कि मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इनकी अंतरंग परिणति को तो देखा है, अंतरंग अभिप्राय में जो बात छिपी है, उसे नहीं पहचानता – ऐसी ही भूल की यहाँ चर्चा कर रहे हैं।

कभी लड्डू देखा है, कभी गुलाब जामुन देखा है, कभी मेवा देखा है, कहीं इसका दिल तो नहीं अटक गया है – ऐसे टटोलते हैं। यदि दिल किसी क्रिया, किसी चीज में अटक गया है तब उस लगाव को मिटाने के लिए दृढ़ता से प्रभावशाली व्याख्यान और शैली को अपनाया जाता है, उसका नमूना देते हैं, जिसकी जैसी योग्यता हो उसे मिल जाए।

हे जितेन्द्रिय! तू भोजन-शयनादि रूप कल्पित पुद्गलों को अब भी उपकारी समझता है और ऐसा मानता है कि इनमें से कोई पुद्गल ऐसा भी है कि जो मैंने कभी भोगा नहीं है, यह तो महान आश्चर्य की बात है। भला विचार तो कर कि ये मूर्तिक पुद्गल तेरे अरूपी आत्मा में क्या किसी प्रकार मिल सकता है, मात्र इंद्रियों के ग्रहणपूर्वक उसका अनुभव करके तूने ऐसा मान लिया है कि मैं उसका भोग करता हूँ।

इसलिए हे महाशय! परद्रव्यों से तुरंत ही मोह, त्याग और अपने आत्मा में निश्चल स्थिर होने का प्रयत्न कर।

यदि किसी पुद्गल से आसक्त रहकर मरण पाएगा तो याद रख कि तुझे हल्का तुच्छ जंतु होकर इन पुद्गलों का भक्षण अनंत बार करना पड़ेगा। इस भोजन से तू शरीर का उपकार करना चाहता है तो किसी भी प्रकार उचित नहीं है; क्योंकि शरीर इतना कृतघ्नी है कि वह किसी के किए हुए उपकार को नहीं मानता, इसलिए भोजन की इच्छा छोड़कर केवल आत्महित में चित्त लगाने में ही बुद्धिमत्ता है।

भोजन दिखाएँ, अनेक प्रकार के योग्य आहार दिखाएँ और यदि उसका चिंतन कहीं अटका हुआ देखें तो परमार्थ के ज्ञाता आचार्य उसे ऐसे उत्तम प्रभावशाली व्याख्यान द्वारा समझाएँ, जिसका समागम प्राप्त हुआ है जो समझने वाला दिखाई दे रहा है वह ऐसा व्याख्यान करते हैं – हे जिनेन्द्र! तू तो जितेन्द्र है, तूने इंद्रियों को जीत लिया है, तू इंद्रियों से पार होने वाला है, तू इंद्रिय अतीत है, तू भोजन–शयन रूप कल्पित पुद्गलों को अभी भी उपकारी समझता है। तुझे भोजन शयन उपकारी नजर आ रहा है, इन पुद्गलों का भक्षण अनंत बार करके छोड़ा है –

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्ठान अनेक बनाए थे, दिन–रात भखे ना मिटी प्रभुवर।
अब संयम भाव जगाने को लाया हूँ यह सब थाली भर।।

दिन–रात का ठिकाना नहीं था मैंने यह व्यंजन खूब खाए। अब संयम भाव जगाने को थाली भरकर लाया हूँ, क्या भोजन करने से शरीर में जान आती है, तबीयत ठीक हो जाएगी – ऐसा समझता है। अरे कहीं धोखे में तो नहीं है, यह तुझे खाने को क्यों नहीं देते हैं, यह तुझे खिलाते क्यों नहीं हैं, ऐसे सारे विकल्प छोड़ दे।

नरकों में कैसा काल गया –

भोजन बिन नरकों में जीवन, भर पेट मनुज क्यों मरता है।

भोजन के बिना नरकों में जीवन दिखाई देता है, इसका मतलब है भोजन से जीवन नहीं चलता।

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने आया हूँ।।

जिनेंद्रदेव तीर्थंकर परमात्माओं को देखो, ज्ञानी मुनिराजों को देखो, भोजन के बिना अंदर में अक्षय सुख है, आनंद है, भोजन की जरूरत नहीं है, भोजन नहीं करने से शरीर शिथिल नहीं हो जाता है, 8 वर्ष कुछ अंतर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व तक शरीर बना रहता है।

मैं मान रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।

मेरी कैसी मान्यता बनी हुई थी, मैं गलतफहमी में था, मुझे धोखा हो गया था, आज सल्लेखना प्राप्त व्यक्ति ने जब भोजन की तरफ देखा, तब कहा – ऐसा मानता है कि इनमें से कोई पुद्‌गल ऐसा भी है जो मैंने कभी भोगा नहीं है ?

सोच भाई! गंभीरता से विचार कर, क्या सोच रहा है, खाने-पीने में ही पड़ा हुआ है, उसकी आसक्ति छूटती की नहीं। आसक्ति की जाँच करने के लिए उसके सामने भोजन दिखा रहे हैं।

लड्डू, पेड़े, मेवा, मिष्ठान्न दिखा रहे हैं। जब सामने चीज आये तब असली आसक्ति का पता चलता है, बिना सामने आये पता नहीं चलता, तब पता चलता है कि परिणाम कितने जुड़े हुए हैं। कहते हैं, लड्डू देखकर मुँह में पानी आ गया, केले देखे, समोसे देखे और पानी आ गया, दूर से देखते ही चेहरा ऐसे खिल जाता है, सामान्य जीवन में चलते-चलते आसक्ति का पता नहीं चलता। तन्मयता कितनी है, इसका पता लगाने के लिए क्या किया जाएगा।

राम और लक्ष्मण में आपस में आसक्ति कितनी है, देव यह जाँच करना चाहते थे, तो लक्ष्मण से जाकर कहा कि रामचंद्रजी तो मर गए और रामचन्द्रजी को कहा कि लक्ष्मण की आयु पूर्ण हो गई और उनका

मरण हो गया। जहाँ गमन होना था वहाँ चले गए। जब रामचंद्रजी ने सुना कि लक्ष्मण का मरण हो गया तो व्याकुल हो गए, जब वियोग की खबर सुनी तो असक्ति का पता चला। कोई घटना घटती है, तब पता लगता है। सामने लड्डू आते हैं तब पता लगता है कि आसक्ति कितनी है, हमें यह समझना पड़ेगा।

मनुष्य गति के कर्म भूमि के जीवों की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व की है, भोग भूमि में मनुष्यों की आयु उत्कृष्ट तीन पल्य की होती है, एक पल्य में असंख्यात वर्ष होते हैं, कभी 8 वर्ष के बालक ने सम्यग्दर्शन पा करके मुनिदीक्षा लेकर केवलज्ञान की प्राप्ति कर ली, एक कोटि पूर्व की आयु थी, भोजन आहार करना नहीं है, केवली के कवलाहार होता नहीं है, अरहन्त बन गए और उपदेश होता चला जा रहा है, अरहन्त अवस्था हो गई और शरीर जैसा का तैसा है अर्थात् ऐसा स्थिर है। ऐसा मानता है कि इनमें से कोई पुद्गल क्या ऐसा भी है कि जो मैंने कभी भोगा नहीं है, अनंत बार क्या नहीं खाया है। आज तक कितने गुलाब जामुन और लड्डू खाए हैं, पेट भरता नहीं है, यह फूटा घड़ा है, यह मिष्ठान्न देखने के बाद में यदि असक्ति थोड़ी बहुत भी दिखाई देती है तो तुझे यह बादाम पसंद आ रहे हैं, तब चेहरा थोड़ा खिला हुआ-सा नजर आया। बादाम का हलवा पसंद आ रहा है, थोड़ा-सा चेहरा खिला।

अरे भाई! यह जो बादाम का हलवा है, यह हलवा विष्टा की पूर्व पर्याय है। हे आत्मार्थी! थोड़ा गहराई से विचार कर, यह हलवा, लड्डू मिष्ठान्न विष्टा की पूर्व पर्याय हैं, खाने के पश्चात् यह मिष्ठान्न विष्टा में बदल जाता है। किसके प्रति आसक्ति कर रहा है, यह छूट जाने वाली चीजें हैं, अनंत बार भोगा है, कोई ऐसा पुद्गल नहीं है, जिसे भूतकाल में भोगा नहीं हो। पुद्गल परावर्तन की चर्चा देखो – कोई पुद्गल ऐसा नहीं है, कोई हवेली ऐसी नहीं है, जिससे बढ़िया से बढ़िया हवेली हमारे

आधीन न रही हो। कोई अवस्था ऐसी नहीं दिखाई देती है, जो हमने प्राप्त न की हो, कोई संयोग ऐसे दिखाई नहीं देते हैं जो हमने प्राप्त करके छोड़ न दिये हों, उच्छिष्ट भोगी वमन कर देने के बाद वापस चाटने जैसी अवस्था दिखाई दे रही है। तुझे ऐसा बंगला चाहिए, आई.ए.एस. कॉलोनी में चाहिए। ऐसा मोबाइल, ऐसी गाड़ी तुझे चाहिए। परावर्तन के बारे में विचार कर रहे हैं, ऐसी सामग्री जीव अनंतबार भोग करके आया है।

सल्लेखना लेने वाले व्यक्ति को समझा रहे हैं, कमर टूट रही है, नरम-नरम गद्‌दा चाहिए। अरे मरकर के गद्दे में जाकर के पैदा हो जाएगा, नरम-नरम गद्दे में, सोफे में खटमल बनकर तीन इंद्रिय बनकर पैदा हो जाएगा, अनंत बार दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय पर्याय में काल बिताया है, अनंतबार काल बिताया है। अब तो सोच, अब तो समझ, अभी तूने व्रत लिए हैं, व्रत लेकर के भ्रष्ट होने का काम क्यों करता है। जब जीने के समय में तूने अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत ले लिए थे, 12 व्रत पहले थे, अब विषयों में रंचमात्र भी आसक्ति मत करना, इनमें से कुछ पुद्‌गल ऐसे भी हैं, जिसे मैंने कभी भोगा नहीं है। यह तो महान आश्चर्य की बात है, जरा विचार तो कर, यह रूपी पुद्‌गल तेरे अमूर्तिक आत्मा से क्या कभी मिल सकता है। यह लड्‌डू क्या आत्मा को सुखी कर सकता है, यह मिष्ठान जिसे देखकर तेरा चेहरा खिल रहा है, क्या यह मिष्ठान्न आत्मा को सुखी करने में समर्थ है।

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से प्रभु भूख न मेरी शांत हुई।
तृष्णा की खाई खूब भारी वह रिक्त रही वह रिक्त रही।।

हे जिनेंद्रदेव! मेरी भूख शांत नहीं हुई है, आसक्ति कम नहीं होती है, आज तक क्या-क्या नहीं खाया है, बचपन से आज तक कितने भोग भोगे होंगे, कितने गिलास पानी पिया होगा, कितने लड्‌डू, कितनी रोटियाँ खाई होंगी, कितने केले खाए होंगे, पर तृष्णा की खाई भरने का प्रयत्न तो बहुत किया, फिर भी वह रिक्त रही।

हमारे पेट में जो अग्नि जल रही है, उसे जठराग्नि कहते हैं और जो भी भोजन उसमें जाता है, सब भस्म हो जाता है, भूखा का भूखा खाली का खाली पेट बना रहता है।

मरणासन्न व्यक्ति को समझा रहे हैं, जिसके प्रति आसक्ति है, उसे त्यागने का प्रयत्न करा रहे हैं, सारी पूजनों के नैवेद्य के छन्द निकालो और जब भी क्षुधा की वेदना सताए, तुरन्त साधक व्यक्ति को सुनाकर उसका स्थितिकरण कराना चाहिए।

स्वाद लेना है तो अपने अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लो। अपने आनंद का स्वाद दृष्टि अंतर्मुख करके लें।

आनंद रस झरता है अंदर में अतींद्रिय आनंद के झरने झरते हैं। अपने चैतन्य तत्त्व की अनुभूति कर उसकी दृष्टि कर। अंदर में आत्मतत्त्व का अवलंबन हुए बिना, अतींद्रिय आनंद का स्वाद चखे बिना, बाहर का रस टूटता नहीं है। बाहर का रस तोड़ना हो तो अंदर का रस चाहिए।

ज्ञानियों का भोजन कैसा होता है ? कविवर नयनानंद लिखते हैं –

एक योगी असन बनावे, तिस भखत ही पाप नसावे।
ज्ञान सुधारस जल भर लावे, चूल्हा शील बनावे।।
कर्म काष्ट का चुग-चुग जारे, ध्यान अग्नि प्रजलावे।
एक योगी असन बनावे तिस भखत ही पाप नशावे।।

आप बनावे आप ही खावे, खावत नहीं अघावे।
तदपि मुक्ति पद पंकज सेवे, नयनानंद शिव नावे।
एक योगी असन बनावे, तिस भखत ही पाप नशावे।।

जोगी तपस्वी त्यागी महाव्रती के अद्भुत भोजन बनता है।
आनंद के झरने झरते प्रदेशों में, निज ध्यान जब धरते हैं।।
एक योगी असन बनावे, तिस भखत ही पाप नशावे।।

आनंद के झरने झरते हैं यह महान आश्चर्य की बात है। विचार तो कर। भोजन मूर्तिक पुद्गल और मैं अरूपी, अमूर्ति, चेतन यह किस प्रकार मिल सकता है?

मात्र इंद्रियों के ग्रहणपूर्वक उसका अनुभव करके तुमने ऐसा मान लिया कि मैं उसका भोग करता हूँ। ये चेतन यदि अचेतन पदार्थ का भोग करने लग जाए तो अचेतन हो जाए, उपभोग करने लगे तो जड़ हो जाए। उपभोग कर नहीं सकता है। हमारी ताकत नहीं है, हम लड्डू खा नहीं सकते। अनादि काल से आज तक किसी ने भी लड्डू नहीं खाया। बताइए बचपन से कितने लड्डू खाए हैं? यहाँ कह रहे हैं कि खा नहीं सकते हैं। कोई एक बात तो कहो।

देह ने रसना इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण तो अनंत बार किया लेकिन लड्डू को कभी खा नहीं सका है।

और मैं अमूर्तिक प्रदेशों का पुंज आत्मा तो लड्डू का स्पर्श भी नहीं करता, खाऊँगा कैसे? लड्डू को मैंने खाया, ऐसा मानता है पर तुम्हारी यह मान्यता झूठी है।

ये व्यर्थ की खोटी मान्यता है। किसी भी पदार्थ का भोग इस आत्मा के होता ही नहीं है। ये तो अपने राग का, अपने विभाव का और ज्ञानी अपने स्वभाव का उपभोग करता है। अज्ञानी अज्ञान भाव का और ज्ञानी ज्ञान भाव का उपभोग करता है। दो द्रव्य एक दूसरे का उपभोग करें, यह जीव-अजीव तत्त्व संबंधी भूल है। इसे ही तो छोड़ना है।

हे दूरदर्शी! तू दूरदृष्टि डाल करके देख तो सही, सिद्ध भगवान को देख, सिद्ध भगवान क्या खाते हैं? चेतन को किसी बाह्य पदार्थ के उपभोग की जरूरत नहीं होती। हे दूरदृष्टि! अब ऐसी भ्रान्त बुद्धि को तू सर्वथा छोड़ दे। मैं भोजन से सुखी हो जाऊँगा - ये भ्रान्त बुद्धि है।

मैं क्षुधा रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ खाकर भी तृप्त नहीं हो पाया हूँ।।

छहढाला की पाँचवीं ढाल गूँजनी चाहिए। चौथी, पाँचवीं, छठी ढाल गूँजने दो । वैराग्य पाठ, समाधिमरण – ये सारी बातों का धारा प्रवाहरूप से चिंतन चलना चाहिए।

जब व्यक्ति को भूख लगती है तब इतनी भूख क्यों लगती है – ऐसा सोचता है ? जब नहीं लगती है तब डॉक्टर के पास जाता है। पूजन में तो आपने क्षुधारोग विनाश के लिए नैवेद्य समर्पित किया। आपको यह बीमारी ही नहीं, तभी तो कहते फिरते हैं कि हमें तो कोई बीमारी नहीं है। आपसे पूछें कि ऐसे कौन से लोग हैं जिन्होंने दवाई नहीं ली। तब सभी के हाथ खड़े हो जाते हैं। तब आपसे कहा कि आप सबका उपवास है। तब बोले – अरे हमारा उपवास क्यों होगा ? अरे यह भोजन क्षुधा रूपी रोग की दवाई है। सामने 56 भोग एक से एक व्यंजन लाकर भी रख दो। जो मौत की तरफ बढ़ रहा है उसे कह रहे हैं।

कालचक्र किताब में एक वाक्य है, जो नेमिचन्द्राचार्य के त्रिलोकसार से लिया है – 'चक्रवर्ती से अनंत गुना भोग भोगभूमि के जीवों के होते हैं।' चक्रवर्ती से अनंत गुना भोग लेने के बाद भी तृप्ति नहीं मिलती' शान्ति नहीं मिलती, नौवें ग्रैवेयक तक चला जाए फिर भी –

पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

आत्मज्ञान के बिना रंचमात्र भी सुख नहीं मिला। तुम्हें लड्डू खिलाने के लिए नहीं दिखाए थे, लड्डू का स्वरूप बताने के लिए दिखाए थे। अंत समय में हमें यह समझना है।

हे दूरदृष्टि! भोगी लोग भोग में, खाने-पीने में आसक्त लोग जो क्षणिक दिखे उनमें सुख मानते हैं और तकलीफ पाते हैं। वस्तुओं का रिजल्ट पता नहीं है। लड्डू का रिजल्ट तो 8 घंटे बाद विष्टा है। वह दिखाई नहीं दे रहा है। नरक में जाएगा वहाँ जा करके डंडे पड़ेंगे। एक-एक दिन का हिसाब देना पड़ेगा। दाने-दाने को तरसाया जाएगा। टनों-मनों खा जाता है। फिर भी तृप्ति नहीं मिलती है।

हे भ्रांत बुद्धि! भ्रांत बुद्धि को सर्वथा छोड़ दे और निर्मल ज्ञान आनंदमय आत्मतत्व में लवलीन हो जा। अब तेरे पास में अवसर, मौका नहीं है, अंतिम समय है।

दाव मत चूकौ यहै।

फिर पता नहीं कौनसी गति अवस्था में जाएगा। फिर जीवन मिलेगा कि नहीं मिलेगा, सब छोड़ दे और उपयोग अंदर में ले जा।

ये वही समय है जिसमें ज्ञानी जीव शुद्धता में सावधान रहता है।

यहाँ ज्ञानियों का उदाहरण देकर समझा रहे हैं।

यह लास्ट बॉल है – मार दे छक्का, मैदान जीत लेगा। अभी नहीं तो कभी नहीं। एक व्यक्ति परीक्षा भवन में बैठा हुआ है और परीक्षा में कुछ भी लिखा नहीं है, पूरा का पूरा कोरा कागज है। अन्तिम घंटी बज गई और कॉपी खाली की खाली है। पहली घण्टी बचपन में, दूसरी जवानी में, तीसरी बुढ़ापे में बज गई हैं। अब क्या बात करेगा? अब अंतिम समय आ गया है। अब मौका नहीं है। अब तीसरी घंटी बज गई अब क्या करें बोल। अब भी अंतिम घंटी बजाने के बाद परीक्षक कॉपी सभी से लेता हुआ जब तक तुम्हारे पास आएगा, इतना तो समय अभी भी बचा हुआ है। अभी भी चिंता मत कर महत्त्वपूर्ण बिंदु लिख दे, ज्यादा व्याख्याएँ मत कर, उसके भी तुझे नंबर मिल जाएँगे। सार-सार याद कर ले, अंत समय में तुझे क्या याद रखने योग्य है क्या करना है वह तुझे बतलाएँगे। अभी यदि नहीं किया फिर यहीं रह जाएगा। जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि अब मौका नहीं मिलेगा वह पूरी जी-जान लगा देता है। पूरी ताकत, मेहनत और पुरुषार्थ से काम कैसे नहीं होगा। दुनिया भर में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि ट्रक के नीचे बच्चा दब गया और अकेली महिला ने उस ट्रक को उठा दिया। कहाँ से इतनी ताकत आ गई।

भक्तामर स्तोत्र में हिरणी के संदर्भ में कथन किया गया –

नाभ्येति किं निज शिशोः परिपालनार्थम्।।

वह अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए शेर से भी नहीं डरती। वह हिरणी सोचती है कि यदि उसका बच्चा उसकी आँखों के सामने मर गया तब जिंदगी भर रोती रहेगी। आज कायरता और कमजोरी का समय नहीं है।

सल्लेखना लेने वाले को शिक्षा देते हैं कि कायरता मत दिखाना, इस मिथ्यात्व के ऊपर चोट देना। मिथ्यारूपी बैरी के ऊपर चोट पड़ेगी तो टुकड़े हो जाएँगे। मिथ्यात्व तो था ही नहीं अब अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान की बात चल रही है, अब संज्वलन की बात चल रही है।

अभी तो यह व्यक्ति बहुत ऊपर उठ गया है। परिणाम नहीं बिगड़ जाएँ। ये सोचने की बात है, जितना अभ्यास करोगे कुछ-न-कुछ हासिल तो होगा। ये वही समय है जिसमें ज्ञानी जीव शुद्धता में सावधान रहता है। यह वही समय है जिसमें दुर्घटना होने की सम्भावना है। यदि ये समय चूक गया तो फिर चला जाएगा। एक बंद भवन के एक लाख दरवाजों में से एक खुला हुआ है। एक व्यक्ति है आँखों पर पट्टी बँधी हुई है। यदि टटोलते हुए जाए तो दरवाजा मिल जाए। हर दरवाजे पर हाथ लगाता है और आगे बढ़ता है। दरवाजे बंद नज़र आते हैं।

हर दरवाज़ा बंद दिखाई देता है। और हर को देखते हुए एक ऐसे दरवाजे पर आता है। अभी तक 99,999 दरवाजों पर हाथ लगा चुका है पर कोई भी खाली नहीं मिला और सिर की खुजली खुजाने लगा और वह खुला हुआ दरवाजा भी निकल गया।

ये आखिरी दरवाजा मौका है, ये चूकने लायक नहीं है। ज्ञानी ऐसे समय में सावधान रहते हैं। ये अवसर निकल जाएगा -

फिर पछताए क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत।

कुछ हाथ नहीं लगेगा तब हाथ मलते रह जाओगे। ज्ञानी जीव शुद्धता में सावधान रहता है। और भेदविज्ञान के बल से चिंतन करता है। मैं अन्य हूँ और ये पुद्गल देहादि मेरे से सर्वथा भिन्न जुदे ही पदार्थ हैं।

यह देह पुद्गलादि भिन्न हैं ऐसा भेदविज्ञान का चिंतन कहता है। यह परपदार्थ, जड़ पदार्थ मुझे सुखी करने में समर्थ नहीं हैं। यदि ये मुझे सुखी करने में समर्थ होते तो बचपन में मैं अनेक बार सुखी हो गया होता। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसे मैंने चखा नहीं हो। लेकिन सुखी नहीं हुआ इसलिए इन्हें छोड़ देने में सार है। त्याग में सार है। विकल्प तोड़ दो। विकल्प तोड़कर निर्विकल्प हो जाओ –

पुद्गल का क्या विश्वासा जैसे पानी बीच बतासा।
जैसे चमत्कार बिजली का जैसे इन्द्रधनुष आकाशा।।

इसलिए हे महाशय! परद्रव्यों से तुरंत ही मोह त्यागकर अपने आत्मा में निरन्तर स्थिर रहने का प्रयत्न करें, निश्चल रहने का प्रयत्न करें।

भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में दृढ़, स्थिर करने की चर्चा यहाँ चल रही है। यह जीव मोक्षमार्ग में स्थित तो है ही उसे मोक्षमार्ग में दृढ़ करना है। यदि यह थोड़ा-बहुत विचलित होने लगे तो अनर्थ हो जाएगा। अंत बिगड़ गया तो सब बिगड़ गया, शुरू से अच्छी तैयारी चल रही थी और अन्तिम परीक्षा में पेपर बिगड़ गया तो सब चौपट हो गया। ऐसे ही शुरू से सब बिगड़ा हुआ चल रहा था और अन्तिम परीक्षा में पेपर अच्छा हो गया तो सब अच्छा हो गया। अंत भला तो सब भला। ये शरीर तो कृतघ्नी है, धोखेबाज है, धोखा करके चला जायेगा। लम्बे समय तक टिकने वाला नहीं है। कितना भी सम्भाल लो। ये छोड़ करके जाएगा ही। यह सम्भलता नहीं है क्योंकि इसका काम ही धोखा देना है।

अभी वृद्धावस्था में ऐसी दशा में आ गए हैं जहाँ देह छूटती हुई दिखाई दे रही है। योग्य गुरु के निर्देश में हैं, उपदेशदाता गुरु दिखाई दे रहे हैं। सल्लेखना करने वाले साधु, मुनि, आचार्य, विद्वान, त्यागी, व्रती, ब्रह्मचारी हो सकते हैं। जो भी हमारे नगर एवं ग्राम के रहने वाले विशेष अभ्यासी हों वे भी सल्लेखना करा सकते हैं। अंत समय में जब जीवन पूरा होने जैसा लग रहा हो तब योग्य गुरु होवें। सल्लेखना करने

वाले आचार्य हों तब तो कराया जा सकता है। भोजन दिखाएँ, कहीं उनकी प्रवृत्ति भोजन-शयन आसन में नहीं अटकी हुई हो।

यदि भोजन में आसक्ति दिखाई देवे तब तुरंत अपनी प्रभावशाली शैली से, उपदेश से, प्रतिपादन से उनकी सारी आसक्ति को छुड़ाएँ।

तू कहाँ भोजन में आकर्षित हो रहा है। भोजन से जीवन नहीं चलता है। भोजन का भोग तू कर नहीं सकता है, ये पुद्गल है, पुद्गल में सुख नाम का गुण नहीं है, तत्त्व नहीं है।

जब इन विषयों में सुख नाम का गुण नहीं है तब मैं भोजन करने से, लड्डू खाने से, मेवा-मिष्ठान्न खाने से सुख-शांति मुझे मिल - ये कितना बड़ा भ्रम है, हम कितने बड़े धोखे में हैं। जहाँ सुख-शांति है नहीं वहाँ से सुख-शांति कैसे मिलेगी? अर्थात् नियम से नहीं ही मिलेगी। हे भव्य प्राणी! अनंत बार अनंत पदार्थों का सेवन किया है।

वैराग्य भावना में कविवर पण्डित भूधरदासजी लिखते हैं -

तो भी तनिक भये नहीं पूरण, भोग मनारथ तेरे।

अर्थात् आज तक कभी भी मेरे भोग मनोरथ पूरे नहीं हुए।

मैं चक्री पद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे।।

चक्रवर्ती से अनंत गुने भोग भोगभूमि में रहकर भोगे हैं अब कहाँ भोगों की अपेक्षा रखता है।

भोगे जो भोग पहले उनका न होवे स्मरण।

उन भोगों का स्मरण मात्र भी नहीं हो, उस समय वह चीज़ खाई थी जो आज तक याद आती है। वह परिस्थिति स्थान आज तक याद आता है। अरे यार! उस समय तो क्या मजे थे - ऐसा स्मरण भी न हो।

भोगे जो भोग पहले उनका न होवे स्मरण।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूँ।।

राजपाठ, संपदा छोड़कर व्रत दीक्षा ले लिए। अब अंतिम समय में सल्लेखना का समय चल रहा है और याद आ रही है कि अरे मुझे तो यह जमीन चुभती है, पाटा चुभता है। कहाँ तो मैं गद्दों पर सोता था अब कहाँ आ गया। सल्लेखना बिगड़ जायेगी, सावधान रहो, विवेक को जाग्रत रखो।

षट रस मिश्रित भोजन से प्रभु भूख न मेरी शांत हुई।
आतम रस अनुपम चखने से इन्दिय मन इच्छा शमन हुई।।

सर्वथा भूख के मेटन को तुम क्षुधा रोग के विनाशने का प्रयास करते थे आज तुम्हें भोजन के प्रति असक्ति कैसे दिखाई पड़ रही है। तोड़ो ऐसी आसक्ति को; मोह त्याग करके अपने आत्मा में निश्चल, स्थिर रहने का प्रयास करो, अपने चैतन्य आत्मतत्त्व को देखो। परिणामों में शिथिल नहीं होवे। परिणामों की शिथिलता सब बर्बाद कर देगी। यदि किसी पुद्गल में आसक्त रहकर मरण पाएगा। कदाचित् ऐसा हो गया, ये जिनागम चिंतामणि रत्न है, जो माँगो वह मिलता है। जो कामना करके मरेगा वह चीज तुझे मिल जायेगी। अकेले जिनदत्त सेठ की बात नहीं है। पानी–पानी करके मरा और मर करके बावड़ी में मेंढक हो गया। सामायिक करने बैठा था। अंत में जो कामना की थी। जिनदत्त सेठ है उसने पानी की कामना की और पानी मिल गया, पानी में जाकर पैदा हो गया ।

जाकी जैसी भावना सो तैसों फल पाए।

तो याद रख कि तुझे हल्का तुच्छ जंतु होकर इन पुद्गलों का भक्षण अनंत बार करना पड़ेगा। मर जायेगा तो उसमें जाकर पैदा हो जाएगा, सोच तो सही। आम आम करता हुआ मरा और उसमें जा करके दो–इन्द्रिय लट बन गया। प्रथमानुयोग में खरबूजे में लट बनने का प्रसंग आता है। राजा मर करके खरबूजे में पैदा हो गया। लोग कहते रहते हैं क्या मौसम है? क्या वनस्पति है? क्या नदी है? एक–इंद्रिय में

जाने की तैयारी चल रही है। शिखर जी के पहाड़ पर भी चढ़ेंगे तो कहेंगे कि देखो-देखो कैसे बादल। यदि ऐसे समय में आयु बंध जाये तो कैसी आयु बँधेगी? शिखर जी, गिरनार जी, पालीताना और श्रवणबेलगोला में ऊपर जा रहे हो तथा नीचे बादल दिख रहे हैं। ऐसी अवस्था में यदि आयु बँधी तब जलकायिक में चला जायेगा। ये समाधिमरण करने वाले व्यक्ति जिसका जीवन पूरा होने वाला है उसको समझा रहे हैं। अंतिम समय में आसक्ति छोड़ो। अंतिम समय में यदि भोग सामग्री दिख रही है तो उसे कहकर लताड़ रहे हैं, कठोर भाषा में कह रहे हैं।

याद रख तुझे हल्का तुच्छ प्राणी होकर इन पुद्‌गलों का भक्षण अनंत बार करना पड़ेगा। अनंत बार किया है। अनंत बार नरक गति में, पेड़-पौधों में जन्म लिया है। गलती से यदि एकेंद्रिय अवस्था में चला गया। मरण बिगड़ गया, आयु पूर्व में बँध गई तो चला जायेगा। सम्भलने का मौका नहीं मिलेगा।

इस भोजन से तू शरीर का उपकार करना चाहता है? शरीर को सम्भालना पड़ेगा? '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं**' ये जैनागम की पंक्ति नहीं है। नीतिकारों ने लिख दिया है। शरीर पहले धर्मसाधन बाद में। जिनवाणी में तो शरीर से दृष्टि हटाने को कहते हैं।

तन से जिसका ऐक्य नहीं हो सुत तिय मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से रोम समूह रहे कैसे।।

सारा झगड़ा, झमेला शरीर को लेकर के है। जिसका शरीर से अपनापन टूट गया उसे किसी से अपनापन नहीं होता है।

प्रवचनसार की चरणानुयोग सूचक चूलिका में आचार्य कुंदकुंद, अमृतचन्दाचार्य दीक्षा की भावना में कहते हैं -

देह के जनक शरीर के अंदर आत्मा विराजमान है।

मेरे अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय से प्राप्त शरीर की जन्मदात्री माता कहा, आत्मा माता को नहीं वह तो शरीर है। ऐसा सम्बोधन किया

है। अपनापन तुड़ा रहे हैं? कौन माता? कौन पिता? कौन भगिनी? कौन भाई? कौन पुत्र? कौन पुत्री? सारे संबंध तो देह से हैं। पत्नी से संबंध देह से है। यदि आज जीवन पूरा हो गया तब कौनसी पत्नी से संबंध रहेगा। कौन से पुत्र, भाई-बहन, माता-पिता से संबंध रहेगा। अभी तेरा मरण हो रहा है, पूरी दुनिया बदल जाने वाली है। घर-परिवार बदल जाएगा। सम्पत्ति, वैभव सब-कुछ अगले ही क्षण बदल जाएगा। ये सल्लेखना धारण करने वाले को उपदेश दे रहे हैं।

तू शरीर का उपकार करना चाहता है? तो किसी भी प्रकार उचित नहीं है। पंडित टोडरमलजी ने इसी प्रकरण में शरीर को सम्भालने की बात कही थी। अब ऐसी बात कर रहे हैं। यही अनेकान्त है। अनजान आदमी यदि इन्हीं बातों को पढ़े तो उलझ जाए। शरीर को सम्भालना है कि ध्यान हटाना है? शरीर को स्थिर, आयु को लम्बी जानें तो शरीर की सुरक्षा संबंधी विकल्प जरूर करना। योग्य प्रासुक औषधियों का सेवन करते हुए शरीर को सम्भालने का जरूर प्रयास करना।

यदि शरीर छूटता जानो तो उसे धोखेबाज और कृतघ्नी जानकर उससे दृष्टि पूरी तरह से हटा लेना। क्योंकि शरीर बहुत कृतघ्नी है; जो उपकार को याद नहीं करता, धोखेबाज है। इसे आपकी परवाह नहीं है। शरीर के प्रति तेरा स्नेह, अपनापन, ये एकतरफा प्यार है। शरीर को तेरी रंचमात्र भी परवाह नहीं है और तू शरीर की रट लगाए हुए है, जिसमें तकलीफ के अलावा और कुछ हासिल नहीं होगा। रोज नहाओ, ब्रश करो, व्यायाम करने और घूमने जाते हैं। हार्ट यह कहता है कि तुम चलते रहोगे तो मैं चलता रहूँगा। अनुलोम-विलोम और कपालभाति करता है। खूब तेल मालिश करता है, खूब खिलाता-पिलाता है। ये सम्भालने से नहीं सम्भलता है। हमने इस शरीर को अच्छे-से-अच्छे डॉक्टर को दिखाया, आयुर्वेद को दिखाया, योगा, व्यायाम वालों को दिखाया, जो भी कर सकता था सब किया, लेकिन यह शरीर अंत

समय में माना ही नहीं। शरीर बिगड़ा तो बिगड़ता ही चला गया। ये शरीर इतना कृतघ्नी है कि किसी के किए हुए उपकार को नहीं मानता। बेजान अचेतन तत्त्व है। उसमें ज्ञान ही नहीं है, उसमें जो भी जान दिखाई देती है वह जानदार तत्त्व तो मैं हूँ। ये जो हलता-चलता, हिलता-डुलता दिखाई दे रहा है। ये जो जान दिखाई दे रही है, ये जान-सी जानदार तत्त्व के कारण दिखाई देती है।

शरीर से दृष्टि हटाने का प्रसंग चल रहा है। धीरे-धीरे दृष्टि हटाएँगे। इसलिए भोजन की चिंता छोड़कर केवल आत्महित में ही, चित्त लगाने में ही बुद्धिमत्ता है। भोजन की इच्छा छोड़ दे, भोजन का विकल्प तोड़ दे। इसको मरणासन्न अवस्था में भोजन दिखाया। यदि आसक्ति दिखाई दी तब प्रभावशाली भाषण से ऐसा समझाएँ। भाषा में दृढ़ता, वजन हो। भाषा इतनी वजनदार हो कि सामने वाले व्यक्ति की भोजन से आसक्ति टूट जाये। खा-खा करके क्या कर लिया? अनंत बार खाया है। अब कुछ भी खाना बाकी नहीं रह गया है। दुनिया में ऐसे कोई भी पुद्गल परमाणु नहीं हैं जिनका अनंत बार भक्षण न किया हो। भक्ष्य-अभक्ष्य दिन-रात दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैंने खा करके न छोड़ दिया हो। आसक्ति छोड़ दे और आत्महित में चित्त लगाओ। शरीर से हटाओ और अंदर में लगाओ। इसी में समझदारी है, बुद्धिमत्ता है।

इस प्रकार हितोपदेश रूपी अमृतधारा। हित किसमें है? सबसे पहले निर्णय करो। मैं कौन हूँ? यदि इसका निर्णय नहीं तब हितकारी बात नहीं होती। हितरूप शरीर है कि आत्मा है? यदि आत्मा है तब आत्मा के बारे में विचार कर। यदि शरीर मानता है तब शरीर के बारे में विचार कर, पर उससे तू मारा जाएगा। तुझे चतुर्गति की जेल में फँसा दिया जाएगा। धोखे में मत रहना। तुम चैतन्य तत्त्व हो, देह के अंदर विराजमान, देह से भिन्न एक तत्त्व हो, उसे पहचानो एक बार।

हितोपदेश रूपी अमृतधारा वर्षा कर, अन्न की तृष्णा को दूर कराकर, अन्न को छुड़ा दे। अंदर में प्यास लगी है। अंदर में आसक्ति है। इस आसक्ति को दूर कराकर कवलाहार छुड़ावे। समाधि कराते कवलाहार छुड़ा दो। भोजन ग्रहण करना बंद कर दो।

केवल दूध, आदि पेय पदार्थों पर रखें। अंतिम समय आ गया है, भोजन छोड़ दिया, अन्न छोड़ दिया, खाना-पीना छोड़ दिया, आहार छोड़ दिया। अब लिक्विड पर आ गये।

त्यागूँ आहार-पानी। आहार पहले त्यागा फिर दूध पर आ गए। दूध, छाछ, नींबू पानी, जूस जैसे लिक्विड पदार्थों पर आ गए। इसके पश्चात् क्रम-क्रम से धीरे-धीरे उसका भी त्याग करा दिया। उसकी विधि है, क्रम से त्याग होता है।

त्याग कराकर उष्ण जल मात्र लेने का नियम कराएँ। अब पानी पर आ गए। अब सल्लेखना पूर्ण होने जा रही है।

यदि ग्रीष्म का समय ज्यादा हो, मारवाड़ जैसा उष्ण प्रदेश हो, तथा पित्त प्रकृति के कारण तृष्णा की पीड़ा सहन करने में असमर्थ हो तो मात्र शीतल जल लेने का नियम रखें और शिक्षा दें। भोजन या पानी पिलाने के साथ-साथ में उपदेश पिलाना जरूरी है।

पानी कितना पिलाया यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, उपदेश कितना पिलाया यह महत्त्वपूर्ण है। उपदेश के लिए अमृत, ज्ञानामृत शब्द का प्रयोग किया है। अमृतधारा शब्द का प्रयोग किया है। ज्ञान ही अमृत है, परमामृत है, उसकी धारा अमृतधारा है।

हे आर्य! हे आराधक! परमागम में प्रशंसनीय मारणांतिक सल्लेखना अत्यंत दुर्लभ बताई है। सभी की सल्लेखना इस विधि से नहीं होती। जीवन न जाने किस मोड़ पर जाकर खत्म हो जाएगा। पता नहीं किस दुर्घटना में कहाँ पर मरेगा। ड्राइंग रूम में कि बेडरूम में मरेगा। पता नहीं आयु कब पूरी हो जाएगी।

मनुष्य जीवन की एक बहुत बड़ी कमी यही है कि हमारी आयु कर्म रूपी गाड़ी हमेशा रिजर्व पेट्रोल में चल रही है। गाड़ी रिजर्व में चल रही है। फिर भी यह सोचता है कि अभी तो बहुत चलेगी और किसी गली, चौराहे पर पहुँचकर रुक जाती है। एक झटके में खत्म हो जाता है। हवाईजहाज में मरेगा कि रोड पर मरेगा, ये आयु कर्म का पेट्रोल कब खत्म हो जाएगा पता नहीं है। इसलिए कह रहे हैं कि 'हे आर्य! हे आराधक! परमागम में प्रशंसनीय, परमागम में समाधिमरण सल्लेखना की प्रशंसा की है। यह सल्लेखना, सल्लेखना की भावना भाने वालों को ही होती है। जिनका जीवन सल्लेखनामय होता है। जीवन भर भावना भाते रहे हैं, उनको ही होती है।'

भगवान को मात्र सुबह-शाम याद नहीं रखना है। दिन-रात की भावना भा रहे थे -

दिन-रात मेरे स्वामी! मैं भावना ये भाऊँ।
देहांत के समय में, तुमको न भूल जाऊँ।।

ये भावना दिन-रात भानी है। भेद-विज्ञान हर क्षण करो, प्रतिपल करो। मैं कौन हूँ? इसका विचार करो। देह से आसक्ति को छुड़ाओ।

परमागम में प्रशंसनीय मारणांतिक सल्लेखना अत्यंत दुर्लभ बताई है। इसलिए तुझे विचारपूर्वक अतिचार आदि दोषों से उसकी रक्षा करनी चाहिए। मेरे परिणाम न बिगड़ जाएँ। अतिचार की तो बात ही नहीं है, अतिचार भी न लग जाएँ।

आसक्ति की वृद्धि देखकर मरणकाल सन्निकट है ऐसा निर्णय होने पर आचार्य समस्त संघ की अनुमति से संन्यास में निश्चलता के लिए पानी का भी त्याग कराएँ, ये सल्लेखना कराने वालों की जवाबदारी है। निर्यापक आचार्य समय को देखकर पानी का भी त्याग करा दें।

समस्त संघ की अनुमति से - इसमें आचार्य का अकेले का निर्णय नहीं चलेगा। व्यक्तिगत निर्णय नहीं चलेगा, विद्वान का अकेले का

निर्णय नहीं चलेगा। सबसे पूछ लो, पानी पर चलते हुए इतना समय हो गया है। अब इनके होठों, नाखूनों की स्थिति देखकर ऐसा लग रहा है कि शायद अब जीवन और नहीं बचा है। सबकी राय पूछ ली कि अब क्या करें। फिर संघ की अनुमति से संन्यास में निश्चलता के लिए पानी का भी त्याग करायें।

इस प्रकार अनुक्रम से चारों प्रकार के आहार का त्याग होने पर संघ से क्षमा करावें। एक तो जब घर छोड़कर सल्लेखना लेने के लिए जा रहे थे तब भी क्षमा कराई थी। जब किसी तीर्थ क्षेत्र पर जा रहे थे तब घर, परिवारवालों से क्षमा माँगकर गए थे। भैया अब हम घर से जा रहे हैं, हमें किसी प्रकार के लाग-लपेट में उलझाना नहीं। मेरे बेटे का मरण हो जाये तो भी मुझे सूचना मत देना, मैं क्या करूँगा जानकर? जिसको जाना है, वह जायेगा ही। वृक्ष पर पँछी आ करके रुके हैं और अलग-अलग समय पर अलग-अलग जगह उड़ जाना है। इस प्रकार की सूचनाएँ देते हैं जिससे कि आराधना नहीं बिगड़े। सबको क्षमा करता है। मुझे किसी से भी किसी भी प्रकार की द्वेष नहीं है।

यह पहले की बात थी। जब तीर्थ क्षेत्र पर गये थे तब ठीक थे, तब मर नहीं रहे थे। अब समाधि के काल की, अंतिम अवस्था की चर्चा चल रही है। अभी चारों तरफ बैठे हुए हैं। समाधि कराने वाले 40-40 हो सकते हैं। सभी ने आपसी राय से सब चीजों का त्याग करा दिया। सबका त्याग करने के बाद संघ की क्षमा करावें, निर्विघ्न समाधि की सिद्धि के लिए कायोत्सर्ग करें - **णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं**....

पंच परमेष्ठी का स्मरण करावें, फिर आत्मा का स्मरण करावें। पंच परमेष्ठी से दृष्टि हटाकर शरीर पर लावें। शरीर से दृष्टि हटाकर अंदर आत्मा पर ले जावें। इस शरीर से दृष्टि हटाओ। शरीर से मोह भी त्याग दो। यह शरीर तुम्हारा नहीं है? शरीर से तुम्हारा यहीं तक का साथ था। जन्म से यहीं तक का साथ था। तुम्हें लम्बी यात्रा पर आगे जाना है।

कायोत्सर्ग अर्थात् काय = शरीर, उत्सर्ग = त्याग, शरीर के प्रति ममत्व का त्याग। शरीर से ममत्व था ही नहीं। जो श्रद्धानरूप ममत्व है। पंचम गुणस्थानवर्ती के समाधि लेने वाले के शरीर से ममत्व नहीं हो सकता। लेकिन विकल्प में देह आ गई। तब दृष्टि हटाई कि नहीं देखने योग्य है। मल बनाने की फैक्टरी है। इसमें से नव द्वार से मल-मूत्रादिक बहते हैं, अशुचि भावना का चिंतन कराएँ, ये मेरा नहीं है, उसके बाद में वचनामृत का सिंचन करें।

अमृत पिला रहे हैं, आचार्य के जिनवाणी के वचन पढ़ रहे हैं, अमृत रस का पान कर रहे हैं अर्थात् संसार से वैराग्य उत्पन्न कराने वाले कारणों का उक्त आराधक के कान में मंद-मंद वाणी से जाप करें।

शरीर शिथिल हो गया है। मरणासन्न व्यक्तियों के कर्ण इंद्रिय सबसे अंत में जाती हैं, इंद्रियाँ जिस क्रम से प्राप्त होती हैं, उसी क्रम से ये शिथिल भी होती हैं - ऐसा नियम है। जैसे एक इंद्रिय जीव के मात्र स्पर्श इन्द्रिय है, दो इंद्रिय जीव के रसना और मिल गई, तीन इंद्रिय जीव को घ्राण और मिल गई, चार इंद्रिय जीव को चक्षु और मिल गए, पाँच इंद्रिय हुआ तो कान भी मिल गए, उनके जाने का भी यही क्रम है। शरीर जब शिथिल होता है तब सबसे पहले शरीर काम करना बंद करता है, मतलब स्पर्शन इन्द्रिय शिथिल हो गई। उसके बाद रसना इंद्रिय ने स्वाद लेना बंद कर दिया, अब स्वाद का भी पता नहीं लग रहा है, फिर घ्राण इंद्रिय से सुगंध-दुर्गंध का पता नहीं लग रहा है, अभी चक्षु इंद्रिय काम कर रही है। बाबूजी से पूछा - पहचान रहे हो। बोले - हाँ पहचान पा रहे हैं, फिर आँखों ने भी काम करना बंद कर दिया है, मेडिकल साइंस भी कहती है कि कर्ण इंद्रिय सबसे अंत तक काम करती हैं, कोई व्यक्ति कोमा में पड़ा हुआ हो तब भी उसके कान काम करते हैं। अमृत का पान मुख के माध्यम से होता है, अब वचन अमृत का पान कर्ण इन्द्रिय के माध्यम से होगा।

मंद-मंद शब्दों के माध्यम से, धीरे-धीरे शब्द बोलते हुए आराधक के कान में मंद-मंद वाणी से जाप करें, संसार से वैराग्य उत्पन्न करने वाले कारणों को बताएँ। श्रेणिक, वारिषेण, सुभग आदि के दृष्टांत सुनावें और व्यवहार आराधना में स्थिर होकर निश्चय आराधना की तत्परता के लिए इस तरह उपदेश करें। अभी तक जो भी धीरे-धीरे त्याग कराया है। इस व्यवहार के साथ में आराधना करने वाले से उपदेश करें - भैया तू कौन है ? एक बार देख तो सही।

तो तुमरे जिए कौन दुख है मृत्यु महोत्सव भारी।

अभी तक बहुत सारी बातें व्यवहार की अपेक्षा से बताईं कि इसका त्याग करो, इसे छोड़ दो, पर के प्रति आसक्ति न रहे, एकमात्र यही उद्देश्य था। शरीर को कृतघ्न धोखेबाज कहा गया है, यह शरीर हमें नुकसान पहुँचाने वाला है, अंत समय में साथ नहीं देगा, यह साथ छोड़कर जाने वाला है इसलिए इससे सावधान रहना चाहिए।

कान में मंद-मंद, छोटी-छोटीसी बातें कहते रहें, उन्हें सुनाते रहे, इन छोटे-छोटे प्रसंगों को सुनकर परिणामों में स्थिरता आती है। जब व्यवहार आराधना में स्थिर हो जाए फिर निश्चय आराधना की तरफ उपयोग लगाओ। जब इन उदाहरणों को समाधिमरण पाठ में पढ़ते हैं, तब हमारा चित्त आंदोलित हो जाता है। इनको देखो इन्होंने कितनी दृढ़ता से इसका पालन किया और मैं विचलित हो रहा हूँ।

देखो सुभग ने अपना भव बिगाड़ लिया, देखो श्रेणिक अंत समय में सल्लेखना नहीं ले पाया और नरक में चला गया, यह देखकर हमें दृढ़ता आती है और पुरुषार्थ की विशेष प्रेरणा भी मिलती है। श्रेणिक का जीवन उत्कृष्ट और वैराग्य उत्पादक दिखाई देता है। श्रेणिक पहले बौद्ध धर्म अवलम्बी था बाद में जैन हो गया। चेलना से, धोखे से शादी कर ली, बेटे को तैयार कर लिया, कैसा छल मायाचारी के परिणाम, उस जीव की बात कर रहे हैं।

जो जीव केवली के पादमूल में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने वाला है, जो तीर्थंकर प्रकृति का बंधन करने वाला है, उस जीव की बात कर रहे हैं, जिसे हड़बड़ाहट में आत्महत्या का दोष लग गया हो वह कितना आकुलित-व्याकुलित हो गया होगा, जो जीव भगवान महावीर के पास प्रथम श्रोता के रूप में उपस्थित थे, जीवन का उतार-चढ़ाव देखा। कहाँ यशोधर मुनिराज के गले में सर्प डालने का भाव आया। तीन दिन तक सर्प डाले रहा, कितने क्रूर परिणाम हुए होंगे। मुनिराज मात्र के प्रति विद्रोह का परिणाम हृदय में था, वही जीव थोड़े समय बाद में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करेगा, तीर्थंकर कर्म प्रकृति का बंधन करेगा, यह किसको विश्वास हो सकता है।

मुनिराज के ऊपर जंगली कुत्ते छोड़ दिए हैं, धन्य है मुनिराजों का जीवन और धन्य है राजा श्रेणिक का पुरुषार्थ। सप्तम नरक की आयु बंध जाने के बावजूद भी प्रथम नरक की रह गई और आगे प्रथम तीर्थंकर बनने वाले हैं।

वारिषेण के साथ वाले पुष्पडाल कहाँ तक गए - ऐसे प्रसंग सुनाओ। सुभौम चक्रवर्ती ने तो अंत समय में अपने परिणाम बिगाड़ लिए, जो सम्यग्दृष्टि हैं, धर्म अवलम्बी हैं, चक्रवर्ती का पुण्य है, बचपन से ही णमोकार मंत्र पर श्रद्धान है, अंत में परिणाम बदल गए और हाथ से लिखकर पैर से मिटा दिया। श्रद्धानी व्यक्ति की भी होनहार खोटी होती है, तो अन्त बिगड़ जाता है। हे आराधक! अपना भव बिगड़ न जाए इसलिए सावधान रहना।

इन सब बातों से उपयोग को स्थिर करके उपदेश करें, निश्चय आराधना की तत्परता से उपदेश देवें। यह अंतिम उपदेश है जो दिए जाने योग्य है, इससे बढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती।

हे आराधक! हे अविनाशी! देह विनाशी है, छूट जाने वाली है, मैं अविनाशी आत्मतत्त्व हूँ, देह-देवालय में विराजमान रहने वाला अलग

तत्व हूँ, बीमारी वाला तत्व नहीं हूँ, शरीर शिथिल वाला तत्व नहीं हूँ। मैं शाश्वत आत्मा, इसमें उपयोग को एकाग्र कर दो, ऐसे शब्द बोले जाते हैं कि आत्मा से उपयोग हटे नहीं। देह की विनष्टता क्षणिकता देखकर तकलीफ होती है, क्योंकि छूटने वाला छूट जाएगा, मैं वह तत्व हूँ, जो कभी नहीं छूटता, मैं नहीं बदलने वाला तत्व हूँ, क्या पता आराधक जीव को कौन-सा शब्द चित्त में आ जाए, हृदय में लग जाए। एक शाश्वत शब्द ख्याल में आ गया तो सारी तकलीफें चली जाएँगी इत्यादि वाक्य मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ, आत्मा ही परमात्मा है।

हे जीव! तू परमात्मा है! अपने परमात्मापन की स्वीकृति कर, तू द्रव्य दृष्टि से परमात्मा तो है ही, तुझमें पर्याय में भी परमात्मा बनने की योग्यता है, परमात्मा में और तेरे में कुछ भी अंतर नहीं है, अपने को परमात्मा से कम अनुभव मत कर। तू त्रिकाल है, ध्रुव है तुझमें और परमात्मा में रंचमात्र भी फर्क नहीं है, फर्क देखने वाली दृष्टि दूषित है, उस दृष्टि से देख जिससे फर्क नहीं दिखाई देवे। अपने परमात्मापने का निर्णय करना पड़ेगा, अंदर समुद्र की गहराई में जाकर देखेगा तो रत्न मिलेंगे, ऊपर-ऊपर से देखने पर शरीर इंद्रिय वाला जड़ दिखाई देगा। रंग-रूप, काला-गोरा, मोटा-पतला दिखाई दे रहा है। अंदर सूक्ष्मता में जाकर देखने पर परमपरिणामिक तत्व है। कितने कर्म के उदय आए, लेकिन तेरा कुछ बिगाड़ने में समर्थ नहीं हुए, नरकों में चला गया तब भी तेरा कुछ नहीं बिगड़ा, तिर्यंच में चला गया तो कुछ भी कमी नहीं आई।

क्षेत्रांतर होने से कुछ फर्क नहीं पड़ता है, अनंतबार जन्म-मरण करने पर भी जन्म-मरण से पार तत्व तू है, अंतर में विराजमान तत्व को देख, उसकी दृष्टि कर आगे पंच परमेष्ठियों के स्मरण की बात है, अनंत भगवान याद आ रहे हैं, अरिहंत दिखते हैं तो अपना आत्मा दिखाई देता है, सिद्ध दिखते हैं तो अपना सिद्ध स्वरूप दिखाई देता है।

उसका मोह विनाश को प्राप्त हो जाता है, देखने की दृष्टि चाहिए। कह रहे हैं कि देखने लायक को देख, नहीं देखने लायक को मत देख। जिसे नहीं देखा है, वह देखने योग्य है, दृष्टिरमा देने योग्य है, अंदर से उपयोग नहीं हटेगा। उपयोग अंदर में जाएगा तो बाहर निकलना पसंद नहीं आएगा, इंद्रिय के सारे विषय-भोग सब फीके पड़ जाते हैं। निश्चय उपदेश दे रहे हैं कि अंत समय में दृष्टि शरीर की तरफ न चली जाए।

व्यवहार में धीरे-धीरे आहार, जूस, दूध, छाछ छुड़ाया था, सबसे क्षमा करके पानी का भी त्याग कर दिया। अब पानी का भी विकल्प मत करना, यदि अब कंठ सूखे तो पानी का विचार मत करना, सोचना कि मैं वह तत्त्व हूँ, जिसने पानी को आज तक स्पर्श भी नहीं किया, पानी मेरी प्यास बुझाने में, मुझे तृप्त करने में समर्थ नहीं है। यदि भोजन से भूख मिटी होती तो कब की मिट गई होती। भोजन, पानी तथा देह से दृष्टि हटाकर चैतन्य रस का पान करो। आनंद रस में निमग्न हो जाओ, अंदर में डुबकी लगाओ, अंदर में डूब जाओ, अर्हम इत्यादि अक्षर जो भी तुझे रुचिकर लगे उसका आश्रय करके अपने चरित्र को उसमें तन्मय कर, अदृश्य को दृश्य कर, अज्ञात को ज्ञात का विषय बना, जानने वाले को देख, अंदर में जानने वाला तत्व स्वयं ज्ञान का विषय नहीं बन रहा है। इंद्रियों के माध्यम से पर की तरफ देखता रहा है, अब अंदर में देखा है।

मैं एक शाश्वत आत्मा हूँ, इस श्रुतज्ञान से अपने आत्मा का निश्चय कर, जिसे 'मैं आत्मा हूँ' - इस बात का निर्णय हो गया फिर स्व-संवेदन में आत्मा की भावना कर। स्वसंवेदन वह ज्ञान हो जो अपने आत्मतत्त्व का वेदन करने वाला हो, चैतन्य तत्त्व का वेदन करने वाला हो, अवलंबन करा देने वाला हो, वह स्वसंवेदन ज्ञान है, उसमें आत्मा की भावना कर समस्त चिंताओं से पृथक् होकर प्राण का विसर्जन कर।

चैतन्य की आराधना-साधना करके प्राणों का विसर्जन कर, इस देह को छोड़ दे। मैं कौन हूँ?

णवि उप्पज्जई णवि मरई, णवि बंध मुक्ख करई।

अर्थ – मैं न तो उत्पन्न होता हूँ और न ही मरता हूँ, न मुझमें बंधन है और न ही मुक्ति है।

मुझे मोक्ष नहीं चाहिए, मैं तो मुक्त हूँ, मुझे मुक्त स्वरूप को देखना है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का क्या करना है, मोक्षमार्ग का क्या करना है, वह तो पर्याय में प्रकट होता है। मैं तो त्रिकाल हूँ, जिसमें पर्याय आती-जाती रहती है, मैं वह समुद्र हूँ जिसमें पर्यायरूपी लहरें आती-जाती रहती हैं। मुझमें अनंत रत्न भरे हुए हैं उसका विचार करना है, आत्मा को परमात्मा विचार करना है।

समयसार की 6वीं, 38वीं, 73वीं और 186वीं गाथा देखो। नियमसार की 47वीं, 48वीं गाथा देखो। तू क्या सिद्ध होना चाहता है, तू तो वर्तमान में ही सिद्ध है। अरे कर्ममल से रहित अवस्था में तू सिद्ध है, सिद्ध देखेगा तो सिद्धत्व प्रकट हो जाएगा। सिद्धत्व देखा जाता है, वर्तमान में बनाबनाया भगवान अभी मौजूद है। ऊपरी मिलावट है, ऊपर का कचरा साफ करना है, भगवान तो बनाबनाया है।

ऊपर से धूल हटी और अंदर खजाना बैठा हुआ है, सूर्य जैसा तेज है ऊपर बादलों के आवरण से उसमें क्या फर्क पड़ता है? स्वर्ण पर धूल चढ़ गई है इसलिए दिखाई नहीं देता है, थोड़ा-सा ऊपर से कपड़ा लगाओ, चमकता हुआ दिखेगा। स्वर्ण का स्वर्णत्व कभी मिटता नहीं है, मैं स्वर्णमात्र नहीं मैं तो पारस तत्त्व हूँ। मैं वह पारस हूँ जो पर्याय मेरा अवलंबन लेगी, वह पर्याय निहाल हो जाएगी, पवित्र हो जाएगी।

जैसे पारस पत्थर का अवलंबन लेने पर लोहा स्वर्ण में बदल जाता है, वैसे ही भव्य जीव तुम वह पारस हो, जो पर्याय तुम्हारा अवलंबन ले वह अतींद्रिय आनंद से सराबोर हो जाएगी, जो श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की पर्याय अंदर में अवलंबन लेगी वह पर्याय स्वर्ण हो जाएगी, केवलज्ञान प्रकट कर लेगी।

अनंत सुख प्रकट कर लेगी अंदर में विराजमान तत्त्व को कोई विचलित नहीं कर सकता। छठे काल की अग्नि की बरसात को मैंने कई बार सहा है। प्रलय को अनंत बार भोगा है, प्रलय मुझे नष्ट नहीं कर सकती। सप्तम नरक की अवस्था को मैंने अनंत बार भोगा है, टुकड़े-टुकड़े हो गए तो भी कुछ नहीं बिगड़ा, परम परिणामिक भाव देख लो, एक कारण परमात्मा को पकड़ लो, काम हो जाएगा।

ये जिनागम के सूत्र हैं, निधियाँ हैं, ये मंत्र हैं। परमात्मा होने का कारण अंदर में विराजमान है, उसकी तरफ ध्यान दें। अंदर में द्रव्यदृष्टि से देख, पर्यायदृष्टि से देखना बंद कर, ऊपरी-ऊपरी मिलावट को मत देख, वह देखने योग्य नहीं है। मैं उसकी तरफ दृष्टि देना चाहता हूँ, जो मेरी दृष्टि को खराब करता है, जो मुझे तकलीफ देता है, उसकी तरफ दृष्टि दो जिसकी तरफ दृष्टि देने मात्र से अतींद्रिय आनंद के झरने झरते हैं।

छोटे-छोटे बच्चे किसी चीज को देखने जाते हैं और फिर रोते रहते हैं अरे जिस चीज से तुझे डर लगता है, जो चीज तुझे तकलीफ देती है, वह देखने लायक नहीं है, पर्याय में तकलीफ है, अपूर्णता है, पामरता है, दीनता है, हीनता है, चिंता है, पीड़ा है, दु:ख है, **जिस पर्याय की ओर दृष्टि करने से दु:ख उत्पन्न हो, उस पर्याय की ओर दृष्टि मत करो।**

जिस स्वभाव में आनंद ही आनंद है, गुण हैं, शक्तियाँ हैं, अपनी पावर को देख मैं कितना शक्तिशाली तत्त्व हूँ, पता नहीं है, देह भले ही कमजोर शिथिल हो जाए पर अंदर में प्रभुतावंत हूँ -

पर्याय भले ही पामर हो, अंदर में प्रभुतावान हूँ मैं।
देखा जब अपने अंतर में, कुछ और नहीं भगवान हूँ मैं।।

जीव को भगवान से कम देखना अपराध है, पर्याय दृष्टि से देखा हो यह अपराध है। अपने को मनुष्य मानना अपराध है, अपने को संसारी, अज्ञानी, रागी समझना-मानना यह भ्रम है, यह ऊपरी चीज है। अंदर में देख यह कष्ट कितनी देर का है, मैं तो शाश्वत आत्मा हूँ। यदि मैं

शाश्वत हूँ तो यह तकलीफ ज्यादा पुरानी नहीं है, यह सिरदर्द या बीमारी ज्यादा पुरानी नहीं है, यह असमानजातिपर्याय ज्यादा पुरानी नहीं है।

अनादि-अनंत में यह ज्यादा मायने नहीं रखता। करोड़ों की संपत्ति वाले 100 रुपये के नुकसान होने पर होहल्ला नहीं करते। अंदर में अनंत संपदा से युक्त है और भिखारी बनकर घूम रहा है, यह भिखारीपना, दरिद्रता मिटनी चाहिए। यह वह उपदेश है जिसमें अखंड अविनाशी ज्ञायक तत्त्व की चिंतन धारा बह रही है और उस चिंतन धारा के काल में विकल्प टूट गए और देह छूट गई तो करने योग्य कार्य कर लिया, निहाल हो गए। स्व-संवेदन, अपनी आत्मा का अनुभव कर।

निहालचंदजी सोगानी का कैसा अद्भुत जीवन था, काल व्यतीत हो जाता है तो वह महापुरुष की श्रेणी में आ जाते हैं, महापुरुष जन्मते नहीं हैं अपने कार्यों से महापुरुष बनते हैं।

आज वर्तमान में हमें जितने विद्वान दिखाई देते हैं, जिन्होंने आराधनापूर्वक देह त्याग की है, जिन्होंने जीवन तत्त्वज्ञान को समर्पित किया था, वे सचमुच महापुरुष हैं। उनका जीवन युगों-युगों तक सचमुच याद किया जाएगा, उनके द्वारा किए गए योगदान को सारी दुनिया याद करेगी। कानजीस्वामी, श्रीमद्राजचन्दजी, बाबूभाई मेहता, पण्डित युगलजी, पण्डित ज्ञानचंदजी, पण्डित वीरेंद्रजी, पण्डित उत्तमचंदजी, पण्डित रतनचन्दजी, पण्डित हुकुमचन्दजी का योगदान सारी दुनिया याद रखेगी। अब प्राणों के विसर्जन का समय आ गया है, यह विदाई समारोह है।

तुम्हारा चित्त किसी परिषह से अथवा किसी उपसर्ग से विक्षिप्त हो गया हो। अरे तुम कहाँ भूख से विक्षिप्त हो रहे हो, अपने परिणामों को सँभालो, यदि परिणाम ढल रहे हैं तो नरक आदि वेदना का स्मरण करो, नरकों में पड़ी मार को, वहाँ गुजरा जमाना भूलो नहीं।

चेतन को मिला अब नरतन तो फिर होश में आना भूल गया।
कंकड़ पत्थर पर मुग्घ हुआ चेतन खजाना भूल गया।।

इस भूल में इतना भूल गया कि स्वयं रत्न की खान है, चैतन्य के खजाने को भूल गया और कंकड़-पत्थर को लिए भटक रहा है। नरक की वेदनाओं का स्मरण कर, अपने भूतकाल, अतीत को याद कर। ज्ञान अमृतरूप सरोवर में प्रवेश कर, क्या पानी की तृष्णा की बात करता है, अंदर में आनंद के सरोवर में डुबकी लगा।

ज्ञान अमृत सरोवर में प्रवेश कर। अज्ञानी जीव शरीर में आत्मबुद्धि अर्थात् मैं दुखी हूँ - ऐसा संकल्प करके अज्ञानी ही दु:खी हुआ करता है, उसे होश नहीं है, पता नहीं है। देखो महापुरुषों का जीवन, उनका जीवन चरित्र, उनकी जीवन शैली, उनकी परिस्थितियों को देखने का नजरिया। हमने उन लोगों की बात की है, जिनका जीवन पूरा हो गया है। जीते-जी कोई महापुरुष नहीं बनता, अपने यार-दोस्त को महापुरुष मानने में एतराज देखा जाता है, यदि किसी को सम्यग्दृष्टि कह दें, तो सभी नाक-भौंह सिकोड़ने लगते हैं, उसे कोई अछूते की बीमारी जैसा समझते हैं। हमने जिन विद्वानों के नाम लिए क्या वे सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते, भेद-विज्ञानी नहीं हो सकते, सब ज्ञानी धर्मात्मा हैं। आज हमें पण्डितज बनारसीदासजी, पण्डित टोडरमलजी, पण्डित दौलतरामजी ज्ञानी दिखाई दे रहे हैं; क्योंकि 100, 200, 300 साल का काल निकल गया है ना। पांडे राजमलजी ज्ञानी सम्यग्दृष्टि थे, सभी सम्यग्दृष्टि थे, उनकी रचनाएँ देखो। किसी भी व्यक्ति के गुजर जाने के 100-200 साल बाद उसका योगदान याद किया जाता है।

अमृत के सरोवर में प्रवेश कर क्योंकि अज्ञानी जीव शरीर में आत्मबुद्धि करते हैं अर्थात् मैं दुखी हूँ - ऐसा संकल्प करके दु:खी होता रहता है; परंतु भेद-विज्ञानी जीव आत्मा और देह को भिन्न-भिन्न मानकर देह के कारण सुखी-दु:खी नहीं होता, यह तन दु:खी-सुखी

नहीं कर सकता है। शरीर जड़ तत्त्व है, शरीर मुझे स्पर्श नहीं करता है, मैं शरीर में रहता हुआ भी शरीर से अछूता तत्त्व, अस्पर्शित तत्व हूँ।

विचार करता है कि मेरा मरण ही नहीं है। जब आपका मरण ही नहीं है, फिर तकलीफ या सिरदर्द किस बात का। मौत का डर जिसे नहीं हो उसे दुनिया में कोई ताकत हरा नहीं सकती है। कोई कहे कि 'पंडित अपना चश्मा उतार और जेब में जो माल है सब निकाल, घर में घुसकर तिजोरी की चाबी निकाल। पण्डित बोला – घर–संपत्ति, तिजोरी रुपये–पैसे सबकुछ चला गया, पर मेरा क्या चला गया। भैया और कुछ चाहिए तो ले जाओ।'

फिर कहा – ज्यादा होशियार बनता है। जान से मार दूँगा, चलाओ गोली मुझे तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं मरता नहीं हूँ, प्रयोग करके देख लो, जिसे शरीर के वियोग की चिंता–घबराहट नहीं हो उसे कौन दुखी करेगा। मेरा मरण ही नहीं है, मैं मरता ही नहीं हूँ, अब दर्द किस बात का है। मुझे मौत नहीं आती – यह बात उस व्यक्ति से कह रहे हैं जो मौत के सम्मुख है। अगले क्षण देह छूटने वाली है, उसके ऐसा चिंतन है।

कविवर बनारसीदासजी की अर्द्ध कथानक का अंतिम छंद है –

ज्ञान कुतक्का हाथ मारि अरि मोहना,
प्रगट्यो रूप स्वरूप अनंत जु सोहना।
जा परजय को अंत सत्य कर मानना,
चलै बनारसीदास फेर नहिं आवना।।

अर्थात् हाथ में ज्ञानरूपी शस्त्र के द्वारा मोहरूपी शत्रु को मार दिया है, इसके बाद जो अपना ही अनंत स्वरूप प्रकट हुआ है, वह सुशोभित हो रहा है, इस पर्याय का तो अंत होना ही है, इस सत्य को मान लेना चाहिए। बनारसीदास यहाँ से जा रहा है, अब फिर से नहीं आने वाला है।

पण्डित बनारसीदासजी, पण्डित टोडरमलजी, पण्डित दौलतरामजी का जीवन देख लो। मुझे रोग ही नहीं है, तब वेदना किस बात की। सिर, घुटने, कमर दुख रहे हैं; शरीर दुख रहा है, अरे! किसकी वेदना की बात कर रहे हो। क्षुधा आदि परिषह है, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, शीत-उष्ण, वेदना, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा आदि सब परिषह हैं अर्थात् सब सहने योग्य हैं, रोने योग्य नहीं।

मैं बीमार होता ही नहीं हूँ, जब मुझे बीमारी ही नहीं होती है, तब मैं दुखी कैसे हो सकता हूँ। जब मुझे रोग ही नहीं हुआ तब वेदना कैसी? पड़ोसी की आग से मैं दुखी हो रहा हूँ।

पण्डित सदासुखदासजी के जीवन का प्रसंग आता है कि राजा ने तनख्वाह बढ़ाने को कह दिया, लेकिन उन्होंने मना कर दिया कि इतने पैसे में मेरा काम चलता है, मुझे नहीं चाहिए। महाराज, यदि आप चाहते ही हैं तो मेरी नौकरी का समय घटा दीजिए। यहाँ से समय घटेगा तो वह समय आराधना में लगा सकूँगा। राजा ने फिर समय भी कम कर दिया और पैसे भी बढ़ा दिए।

मुझे राग नहीं है फिर वेदना कैसी? मैं बालक, वृद्ध या तरुण नहीं हूँ तो फिर मनोवेदना कैसी? वेदना और मनोवेदना दोनों नहीं, वेदना शरीर की, मनोवेदना मस्तिष्क की, आधि और व्याधि दोनों ही नहीं हैं, आधि-व्याधि से रहित मैं परमसमाधि में रहने वाला तत्त्व हूँ, मैं अपने स्वरूप में तल्लीन हो जाऊँ – ऐसी तल्लीनतापूर्वक देह का त्याग करूँ। इस तरह से अंतिम चरणों में देखकर त्याग करने की बात की है।

व्यवहार सल्लेखना में जो त्याग किए जाते हैं वह दो प्रकार की होती हैं – काय और कषाय सल्लेखना। निश्चय सल्लेखना में समस्त पदार्थ से दृष्टि हटाकर आत्मस्वरूप का ध्यान किया जाता है, अपने आत्मतत्त्व को ही जानने की बात की है। मैं शाश्वत तत्त्व हूँ, आराधक उसका विचार कर, अपने चैतन्यतत्त्व की अनुभूति कर, मैं चैतन्य

आत्मतत्त्व त्रिकाल हूँ, अविनाशी हूँ, मेरा नाश-विनाश नहीं होता। नुकसान नहीं होता, तीनों लोक में मेरा कोई शत्रु नहीं है, जो मुझे नुकसान पहुँचा सकता हो, जो मेरे ध्रुवतत्त्व को चुनौती दे सकता हो? शरीर की अवस्थाएँ जैसी होनी हैं, वैसी होती है - ऐसा विचार करें। मैं अनादि से अनन्त तक रहने वाला हूँ। स्वयं को गुणस्थान से परे देखने दो, जब मैं त्रिकाल भिन्न तत्व हूँ, देह हूँ ही नहीं, फिर मैं किस बात का विचार कर रहा हूँ, किस बात की चिंता करूँ। चिंतन करूँ, विकल्प करूँ, मुझे रोग नहीं है, फिर वेदना कैसी? देह की वर्तमान स्थिति को देखकर ममत्व भाव, राग भाव भी नहीं होता; लेकिन उस मोह-ममत्व-राग भाव को हमें ही तो कम करना है। यह तत्त्वज्ञान इसी स्थिति के लिए है। शाश्वत ध्रुव तत्त्व परम पारिणामिक तत्त्व वाला अर्थात् अपरिवर्तनशील तत्त्व हूँ, उदय से निरपेक्ष रहने वाला जो कर्म के उदय देह में पर्याय में स्थिति में संयोग में प्रभावित नहीं होता आता है; लेकिन पर्याय की स्थिति संयोग मैं नहीं हूँ। मैं देह नहीं फिर मेरे कर्म का उदय कैसे आ सकता है, यही परम पारिणामिक भाव का चिंतन है।

कर्म के उदय, उपशम की चिंता नहीं, क्षयोपशम का विकल्प नहीं, कर्म के क्षय का विचार, विकल्प नहीं। मुझमें कर्म का उदय भी नहीं होता और क्षय भी नहीं होता, कर्मों का विचार नहीं करने योग्य है।

जो व्यक्ति अपने शरीर की अवस्थाओं को देखकर अपने को अभागा समझने का विकल्प कर रहा है, जो सोच रहा है कि मैं कितना अभागा हूँ, मेरी कितनी तबीयत खराब हो रही है, मेरा काम नहीं चल रहा है। जो अपने को अभागा समझ रहा है, उसे आचार्यदेव यहाँ भाग्यशाली कह रहे हैं। हम अपने भाग्य को किससे नापते हैं और हमारे संत विद्वतजन सम्यग्दृष्टि किससे भाग्य नापते हैं।

सारी दुनिया गालियाँ देती हो, सारे शरीर में कुष्ठ रोग हो जाए, सारा शरीर बीमार पड़ जाए, तकलीफ हो जाए, देह से दुर्गंध आती हो, कोई

नजदीक रहना पसंद नहीं करता हो, रग-रग में महामारी प्रवेश कर गई हो, हार्ट की परेशानी हो गई हो, किडनी फेल हो गई हो, कैंसर हो गया हो, उसके बाद भी सल्लेखना की भावना भाने वाले के नियम से कह रहे हैं कि तू अभागा नहीं है, तू भाग्यशाली है।

जो जिनवाणी सुन रहा है जो अपने को देह नहीं आत्मा मान रहा है, वह भाग्यशाली है। जो अपने को आत्मा स्वीकार नहीं करे वह अभाग्यशाली है, मिथ्यादृष्टि अभागा है, सम्यग्दृष्टि भाग्यवान है, भाग्य उसे कहते हैं जिनका भविष्य बढ़िया हो, थोड़े दिनों में यह सिद्धों के बगल में जाकर बैठेगा। भगवान महावीर के बगल में जाकर बैठेगा इसलिए यह महाभाग्यवान है।

मिथ्यादृष्टि को भले ही बाहर अनुकूलता है, वह उसे निगोद ले जाएँगी, देह के प्रति जिसकी तन्मयता टूट गई वह भाग्यशाली है, उसकी किस्मत खुल गई है। हमें दुनिया के किसी सर्टिफिकेट की जरूरत नहीं है, आचार्य अमृतचंद्र, पंडित टोडरमलजी ने सर्टिफिकेट दे दिया ना। चार आदमियों ने अभागा कह दिया तो उनकी बात नहीं चलेगी, सास-बहू ने कुछ कह दिया तो उनकी बात से अपने को अभागा मत समझ लेना। मैं अनंत गुणों का खजाना, गुणों का गोदाम, अनंत गुणों का निधान देहरूपी देवालय में बनाबनाया भगवान हूँ।

दरिद्रता की बात मत करो, गौरव सम्मान की बात करो, अपने को भाग्यशाली देखो। भाग्यवान यह संबोधन हमारे-तुम्हारे लिए है।

प्रश्न – नरकायु बंध गई हो तो संलेखना के भाव नहीं आते हैं?

उत्तर – जिनवाणी में ऐसा भी कथन है कि जिस जीव को नरक आयु का बंध हो गया हो, तो उसे सल्लेखना लेने का भाव नहीं आता। संयम का भाव नहीं आता। यदि कोई सल्लेखना लेता हुआ नहीं दिखाई दिया या नहीं ले पाया है तो इसका अर्थ यह नहीं निकालना कि वह नरक गति में जाने वाला है, बाहरी सल्लेखना का मौका नहीं मिला।

इससे कोई नरक में ही चला जाएगा – ऐसा नहीं है। देवगति में जाने वाले साधारण लोग भी होते हैं, दुनिया के लगभग 66% लोग देवगति में जाते हैं, 34% नरक में जाते हैं।

जो जीव एकेन्द्रिय से निकलकर त्रस पर्याय में आ गया है, उसका त्रस काल साधिक 2000 सागर का कहा है, जिसका दो-तिहाई हिस्सा स्वर्ग में बिताया, एक-तिहाई नरक में बिताया। यदि त्रस में 2000 सागर पूरे होंगे तो, 1260 सागर देवगति में, 740 सागर नरक गति में, देव पर्याय में रहने का काल लगभग आधे से ज्यादा है, इसलिए यह जो हाथी, बिल्ली अधिक हैं, वे भी देव बन जाते हैं, बकरी, कुत्ता, हिंदू, मुस्लिम, जैन, अजैन – ये सब देव बन सकते हैं।

परिस्थितियाँ किसके साथ में कैसी हैं और वह क्या ले पाए यह बहुत कुछ उस पर भी निर्भर करता है, अंत समय इतना कम समय मिला कि सल्लेखना ले ही नहीं पाया। हम-आप जैसे लोग जो निरंतर तत्त्वज्ञान में लगे हुए हैं। यदि हमारा किसी दुर्घटना में मरण हो जाए तो क्या उसे समाधिमरण नहीं होगा। हमारी इतनी तैयारी है। यदि हमारा अभी मरण हो जाए तो सल्लेखना मरण है, यदि एकदम साँस रुक जाए, हार्ट अटैक आ जाए, त्रिकाली स्वरूप याद आते ही सल्लेखना हो जाती है, पिछले सारे स्तर पार करने के बाद अणुव्रत की बात की तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत की बात की वृद्धि हो गए तो सल्लेखना ले ली। 12 साल की सीमा हो गई अब क्षमा माँग कर घर छोड़ दिया। तीर्थ, सिद्ध क्षेत्र पहुँच गए, ज्ञानी जीवों के सान्निध्य में जीवन चलने लगा, अंत में तबीयत ज्यादा खराब हो गई, फिर अन्न का त्याग कर दिया, जूस का त्याग कर दिया, छाछ का त्याग करके पानी के त्याग पर आ गए। फिर सल्लेखनापूर्वक मरण किया।

प्राण निकले तो निकले, वे मेरे नहीं हैं, मैं तो चैतन्य प्राण से जीवित रहता हूँ। मैं ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य प्राण से जीता हूँ। इन 10 प्राणों से

मैं न जीता था, न जीता हूँ, न ही मैं जिऊँगा। मैं शाश्वत आत्मा हूँ – इस पर विश्वास होता है, यदि अब जीवन पूरा हो गया तो सल्लेखना होगी।

सल्लेखना की विधिपूर्वक जिस जगह पर पहुँचना था उसी जगह पर पहुँच गए, धीरे-धीरे करके मैं शाश्वत आत्मतत्त्व हूँ, इस पर पहुँचने वाले हैं। परिवार-मित्रजन से मोह को छुड़ाकर इस समय सबको छोड़ दिया और मोह को छुड़ा लिया अब आपके पास में आयुकर्म का डीजल समाप्त हो रहा है, तब विधि की बात नहीं होती।

रोड क्रॉस करते हुए किसी ने उड़ा दिया तो उसको तो किसी विधि का मौका मिला ही नहीं – ऐसे समय में वो तड़प रहा हूँ।

हे भाग्यवान! तू भाग्यशाली है, क्योंकि जिसे देह से भिन्न आत्मा का विकल्प आ जाता है, वह भाग्यशाली है। जिसके पीछे नौकर-चाकर दौड़ते हों, गाड़ियाँ दौड़ती हों, उसे भाग्यशाली नहीं कहते हैं, जिसके बेटे-बहुएँ आगे-पीछे दौड़ती हों उन्हें भाग्यशाली नहीं कहते हैं, जिसे जिनवाणी सुनने का अवसर मिले, तत्त्वज्ञान मिले, मैं आत्मा हूँ – ऐसी चर्चा सुनने को मिले वह भाग्यशाली है।

किसी भी व्यक्ति का विकल्प यह निर्धारित करता है कि वह कहाँ जाएगा। मैं स्टेशन गया और वहाँ जाकर टिकट खरीदी। मुझे विकल्प आया कि शिखरजी चला जाऊँ तो शिखरजी का विकल्प आया तो शिखरजी जाऊँगा, मुंबई का विकल्प आया तो मुंबई का टिकट कटाऊँगा। आप जहाँ जाएँगे वहाँ जाने का विकल्प पहले आएगा। उससे सामने वाला व्यक्ति आसानी से पहिचान लेगा कि अंतिम समय में इसके विकल्प कैसे थे। यदि अंतिम समय में मैं मर नहीं जाऊँ, मैं मरना नहीं चाहता ऐसे विकल्प आ रहे थे तो चिंता मत कर ऐसी देह मिलेगी, जहाँ देह-देह मिलती रहेगी। यदि अंतिम समय में आत्मा ख्याल में आ गया तो ऐसी अवस्था मिलेगी जहाँ आत्मा ही मात्र रह जाएगी, देह नहीं मिलेगी। एक-दो भव शेष हैं, फिर मोक्ष में पहुँच जाएँगे, समाधि की

भावना तो बनी ही है, एक व्यक्ति ने त्याग 10 साल, 5 साल अथवा 2 महीने के लिए किया और किसी ने दो दिन के लिए किया, किसी ने 2 मिनट के लिए किया। ऋषभदेव को दीक्षा लेने के बाद एक लाख पूर्व का समय मुक्ति प्राप्त करने में लग गया, 83 लाख पूर्व की अवस्था में दीक्षा ली, केवलज्ञान प्राप्त करने में 1000 वर्ष लग गए। बाहुबली को 12 महीने लग गए और भरतजी को अंतर्मुहूर्त काल लगा, हम किसका अनुसरण करें, हमें तो ज्ञायक का अनुसरण करना है, समय का नहीं।

जितना समय लगना होगा वह तो लगेगा। उसकी चिंता मत करो, सभी की सल्लेखना का काल अलग-अलग होता है। हम त्याग करने बैठे और मना कर दिया तब शायद अधोगति का बंध हो जाए। यह व्यक्तिगत चीज है, अपनी स्थिति देखकर के निर्णय करें, जब परिस्थितियाँ होंगी फिर पूछा नहीं जाएगा। परिस्थितियाँ अपने आप निर्णय कर देती हैं, मैं यह करूँ कि वह करूँ, अब मैं ऐसा करूँ कि वैसा करूँ। होनहार भी कोई चीज है, आयु बँध गई है अब क्या करोगे?

आपको यदि चिंता हो रही है तो आज से ही यात्रा की तैयारी कीजिए, आप तैयारी कीजिए, अंदर की तैयारी है, सबसे क्षमा करवाना। यह क्षमता प्रतिदिन के जीवन में होती है, हममें बड़ी से बड़ी गलती करने वाले को भी क्षमा करने की योग्यता हो। उत्तम क्षमा के धारक महा मुनिराज कैसे होते हैं, उनका जीवन कैसा होता है, वह क्या विचार करते होंगे, वह ऐसा नहीं सोचते कि अंत समय में क्षमा करेंगे। बड़े से बड़ा अपराध करने के बाद भी सामने वाले को क्षमा कर देते हैं। आगम में वचन है - नारद और रुद्र की उत्पत्ति आर्यिका के निमित्त से होती है। छठे-सातवें गुणस्थान की भूमिका वाले वे दिगंबर संत, एकदम झटके से गुणस्थान गिरा और परिणति बदल गई, भोगों का भाव आया आर्यिकाओं का गर्भधारण। पुनः परिणाम बदल गया। आचार्य दीक्षा कर देते हैं, ग्लानि का भाव न लाकर उन्हें क्षमा कर देते हैं और

उसी भव से मोक्ष चले जाते हैं, नारद मोक्ष नहीं जाते, माफ करने के लिए इतना बड़ा ह्रदय चाहिए। हमारे भाई, पुत्र, पत्नी की हत्या कर दी हो तो हमें क्षमा करने की हिम्मत होनी चाहिए।

अपने कर्म सिवाय जीव को कोई न फल देता कुछ भी।

अरे आयु इतनी ही थी? कौन क्या करे? पण्डित टोडरमलजी से क्षमा करना सीखो। वे कहते हैं – 'हे राजा! हे महावत! तुम्हारा कोई दोष नहीं, लगता है शायद आयु पूरी होने का काल आ गया है।' सल्लेखना का अभ्यास अभी करना होगा। अभी तो पत्नी से कुछ कह दिया तो पत्नी का मुँह फूल जाता है, पति से कुछ कह दिया तो पति बोलना बंद कर देता है। माता-पिता, भाई-बहन की बनती नहीं है, एक ने कुछ बोल दिया तो बरसों की दोस्ती टूट जाती है। अंतिम समय में सल्लेखना नहीं होगी, आज सल्लेखना की तैयारी करो। एक व्यक्ति गाली देता है तो बर्दाश्त नहीं होता है, क्रमबद्ध पर्याय, कर्म के उदय का विचार करना चाहिए। परिस्थितियों के बारे में अपने पुण्य-पाप के उदय, द्रव्य की स्वतंत्रता के बारे में विचार करना होगा। यशकीर्ति-अपयशकीर्ति के बारे में विचार करना होगा, आप सभी तत्वज्ञान के माहौल में रहिए, यह तत्वज्ञान नागदमनी है।

तत्वज्ञान की नागदमनी मिथ्यात्व का जहर चढ़ने नहीं देती, कषायों की तीव्रता को हावी नहीं होने देती, तुरंत खत्म कर देती है। कभी जहर हावी होने लगे तो तत्त्वज्ञान की घुटी पी लो तो सब कुछ उतर जाएगा। शमन हो जाएगा, कषायों को शांत, शमन करने के लिए रोज-रोज इसमें लग रहे हैं, आपकी सद्गति होगी, आपका भविष्य बहुत उज्ज्वल है, ऐसी बातें सुनने वाले अभागे नहीं होते हैं।

पाप का उदय कभी भी आ सकता है उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कैंसर हो गया, हार्ट अटैक आ गया, जो बीमारी तुम्हें हो रही है वह तुम्हारी है ही नहीं, उसका विकल्प मत करो, डॉक्टर ने बता दिया

कि कैंसर की गम्भीर स्थिति है, डॉक्टर जानता ही नहीं कि तुम कौन हो, जिसे डॉक्टर देख रहा है वह मैं नहीं हूँ, सारा खेल ही खत्म हो जाएगा। सारे झगड़े निपटाने के लिए आप एक बार अपने को चैतन्य अनुभव करो। किसी भी गाथा का सहारा ले लो, लेकिन भाव यह है कि मैं चैतन्य तत्व हूँ।

हे भगवान! आपका और हमारा दोनों का भाग्य है कि इस तुच्छ से शारीरिक दुख से कायर होकर डर मत। शरीर का दुख कितने दिन का है, कैंसर हो गया तो 2 साल, 5 साल, 10 साल में ठीक हो जाएगा। अनादि काल से मिथ्यात्व का कैंसर चल रहा है, उसे देख, असली कैंसर मिथ्यात्व है, जहर है, बीमारी तो देह में एकत्वबुद्धि करने की हुई है, शरीर के अपनेपन की बीमारी लगी हुई है, उसे तो देखा नहीं है, तुच्छ-सी बीमारी को पकड़े बैठा है, किसी व्यक्ति को लास्ट स्टेज का कैंसर हो, तबीयत थोड़ी ठीक थी, कामकाज कर लेते थे, दो-तीन छींक आईं और आप चिंता करने लग गए तो कैंसर का तो उपचार नहीं हो रहा था, तुझे छींक की चिंता लग रही है। तकलीफ को तो देखा नहीं, हार्ट की चार नसों में 98% ब्लॉक था उसकी तो चिंता नहीं करें और थोड़ी-सी नाक बह रही हो उसकी चिंता करें। 10-12 बाल झड़ने लगे, थोड़े-से दाँत हिलने लगे। नाखून थोड़ा-सा ज्यादा कट जाए उसे लेकर यह रो रहा है और शरीर में टीबी की बीमारी है। समझदार आदमी कहेगा तुम तुच्छ-सी चीज को लेकर क्यों बैठे हो। ऐसे ही वीतरागी संत कह रहे हैं कि तुम इस तुच्छ-सी बीमारी में उलझे हुए हो, अंदर ममत्व की बीमारी के सामने यह कोई रोग ही नहीं है।

कायर होकर प्रतिज्ञा से रंचमात्र भी च्युत मत होना, डरना मत, चिंता करने की तुम्हें जरूरत नहीं है, सल्लेखना संयम की भावना से च्युत मत होना, दृढ़चित्त होकर परम निर्जरा की अभिलाषा करना, चित्त में दृढ़ता रखो, दृढ़चित्त हो जाओ, परम निर्जरा की अभिलाषा रखना, यह

भव परिवर्तन तो तात्कालिक है, मुक्ति की अभिलाषा रखना, इस भव में तो मोक्ष है नहीं, अब भव परिवर्तन होगा तो बीच में कोई स्टेशन मिलेगा। पूर्व में यदि नरक आयु बाँध ली हो तो मिल जाएगी; लेकिन अन्तिम लक्ष्य तो मेरा मोक्ष ही है, सिद्ध दशा है, मेरी सीट तो सिद्धालय में है। वर्तमान परिणाम से चिंतित होना योग्य नहीं है, आप निडर रहें, निश्चिंत रहें, चिंता करने वाला तत्त्व मैं नहीं हूँ।

हे भव्य जीव! तू भाग्यशाली है – ऐसा संबोधन सुनकर ही चित्त प्रसन्न हो जाता है; क्योंकि ऐसा कहने वाले साधारण लोग नहीं हैं, महापुरुष हैं, भाग्यशाली कहना इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्वपूर्ण उसे कहने वाले हैं।

सिद्धों की श्रेणी में आने वाला जिनका नाम है।

उसकी बात है, यह सम्मान साधारण व्यक्तियों द्वारा दिया हुआ नहीं है, यह सम्मान पंच परमेष्ठियों द्वारा दिया गया है, साक्षात अरहंत भगवान द्वारा दिया हुआ है। इस तुच्छ से शारीरिक दुख से किंचित् मात्र भी विचलित नहीं होना दृढ़चित्त होकर परम अभिलाषा की आशा रखना। यदि आपकी श्रद्धा दृढ़ है, हृदय मजबूत है तब सब सहज है, परिणाम विचलित नहीं हो पाए। परिणाम गिरे तो मैं गिरा, शरीर गिरा तो मैं नहीं गिरा। देह संयोग छूटे तो मेरा कुछ नहीं छूटा, परिवार छूटा तो मेरा कुछ नहीं छूटा, परिवार तो अनंत बार छूटा है।

मेरा परिवार तो मेरी अनंत गुण संपदा है।

सारा अनंत गुण समाज प्राप्त हो जाता है, मेरा परिवार कभी छूटता नहीं है, मेरी संपदा कभी छीनी नहीं जाती है, मेरा वैभव कभी लुटता नहीं है, जो लुट जाता है वह मेरा वैभव नहीं है, प्राण जाए पर प्रतिज्ञा नहीं जाए।

प्राण भले ही चले जाएँ लेकिन वचन अर्थात् प्रतिज्ञा नियम नहीं जाएगा। हम अपने नियम का दृढ़ता से पालन करेंगे। यदि कदाचित्

व्यक्ति स्वीकार नहीं कर पाए तो उसे सहजता से समझाते हैं। अंत समय में ज्यादा गरिष्ठ बातें नहीं होती हैं। अब फिर थोड़ा-सा सरल उपदेश करने की जरूरत है, बात तो सच्ची है कि मैं देह नहीं हूँ, पर तकलीफ हो रही है उसका क्या करूँ? बात कितनी ही सच्ची क्यों न हो पर जब व्यावहारिक स्तर पर जाकर देखते हैं कि जब सिरदर्द होता है, जब घुटने दर्द करते हैं तब प्राण निकल जाते हैं, उसे ही समझाते हैं - पण्डित टोडरमलजी कहते हैं कि एक बार तू अतीत में जाकर के देख, अपने कष्टों की तुलना करके देख, मेरे जैसी तकलीफ किसी को नहीं हुई, इससे तुलना करें - मेरे जैसा खराब परिवार, पत्नी, बच्चे किसी के नहीं हैं, बहुत नालायक बच्चे हैं, मेरे माँ-बाप मेरे पीछे पड़े रहते हैं।

उसे समझाते हैं - अरे भाई! तुम्हें क्या तकलीफ है, यदि तकलीफ देखनी है तो इन महामुनिराजों की देखो, उनका चरित्र देखो, पौराणिक कथाएँ-प्रसंग-कहानी देखो। यहाँ महापुरुषों की तकलीफें नहीं बता रहे हैं अपनी परिस्थितियों की तुलना महापुरुषों की परिस्थितियों से कर रहे हैं। हमें यह देखना है कि हम कितने पानी में हैं।

मैं शाश्वत आत्मा हूँ - ऐसी बात उसके अंतर में उतर जाने के बाद सल्लेखना लेने वाला क्या करे? दर्द हो रहा है तो महापुरुषों को याद कर जब तक तू आत्मचिंतन करता हुआ संन्यास ग्रहण करके समाधिमरण की आराधना में बैठा है तब तक प्रतिक्षण तेरे प्रचुर कर्मों का विनाश हो रहा है, तू सल्लेखना में लगा हुआ है तो क्यों भूल गया है कि तेरे आत्मचिंतन की दशा साक्षात मुनिराज जैसी है, जिसकी जैसी स्थिति वैसी सल्लेखना, चौथे-पाँचवें-छठे गुणस्थान वाले की वैसी सल्लेखना है।

आत्मचिंतन करते-करते संन्यास ग्रहण करने को समाधिमरण की आराधना में बैठा है, देह से भिन्न आत्मतत्व का चिंतन जब तक करता रहेगा, तब तक प्रतिक्षण तेरे प्रचुर कर्मों का विनाश हो रहा है, क्या तू

धीरे-धीरे पांडवों का चरित्र भूल गया। कौरवों ने पांडवों के साथ क्या-क्या नहीं किया।

मरणासन्न अवस्था में घुटने दर्द कर रहे हैं, यह किस तरह की तकलीफ है, रंचमात्र भी तकलीफ नहीं है। गरम-गरम लोहा पहना दिया सारा शरीर जलकर के राख बनने की नौबत पर भी ध्यान से विचलित नहीं हुए, परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं, फिर भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। पांडवों का चरित्र भूल गया क्या? जिन्हें लोहे के आभूषण अग्नि में लपेटकर द्वेषियों ने पहना दिए थे, तब भी तपस्या से किंचित् मात्र भी विचलित न होकर आत्म-आराधना से युधिष्ठिर, अर्जुन व भीम ने मोक्ष पद प्राप्त किया।

यह सब आत्मा शरीर के बल पर होता है, आत्मा का बल होता है, जिससे तकलीफ, तकलीफ नहीं दिखाई देती है, इसके अंतर की ताकत भेदविज्ञान की ताकत काम कर रही है। अपने को देह से भिन्न देखते हैं, गजकुमार मुनिराज, सुकुमाल मुनिराज, सुकौशल मुनिराज को देख तो सही, विचार चिंतन करते चले जाओ तो बात समझ में आ जाएगी।

सल्लेखना में कष्ट होता है ऐसा नहीं है, हमें ऐसा लगने लग जाता है देखो उनके माथे पर सिगड़ी जल रही थी अत: खोपड़ी जल गई, राख हो गई, फिर भी विचलित नहीं हुए। पांडवों को उपसर्गकर्त्ता ने आभूषण पहना दिए फिर भी विचलित नहीं हो रहे हैं, लोहे की बेड़ियों को आग में तपाया गया, लाल हो गया फिर उठाकर गले में घुमाया और उन्हें हार पहना दिए, माला पहना दी, बाजूबंद पहना दिए। ऐसा लग रहा है कि कष्ट पीड़ा में हैं, पर वह ध्यान से विचलित नहीं हुए।

कारण यही है कि उनका ध्यान उपयोग कहीं और है; शरीर की तकलीफ की तरफ ध्यान ही नहीं है, जब उपयोग कहीं और चला जाता है तब शरीर की पीड़ा-कष्ट देने में समर्थ नहीं होती। वर्णीजी के जीवन का ऑपरेशन का उदाहरण है कि 'मैं सामायिक कर रहा हूँ, तुम अपना काम

कर लो, एनेस्थीसिया के प्रयोग की जरूरत नहीं है, आप तो समय बता दो मैं अपने हिसाब से देख लूँगा।'

लोग पजल लेकर बैठ जाते हैं, अपना उपयोग उसमें लगा लेते हैं, शरीर के अंदर चीर-फाड़ कर दो, ध्यान वहाँ लगा देते हैं, पढ़ने वाले बच्चों के सामने से कोई निकल जाए, बाजे बज जाएँ तो भी उन्हें पता ही नहीं चलता, कौन कब आया मुझे तो पता ही नहीं चला। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की जब लिखने की तल्लीनता होती है, तब कोई भी आ जाए और चला जाए उन्हें फर्क ही नहीं पड़ता, लोग खड़े रहते हैं, जब उनका उपयोग उस पर से हटता है, तब वह कहते हैं कि अरे आप आए हैं। आपका उपयोग किधर है, सारा खेल इस बात का है।

खेलते हुए बच्चे को चोट लग जाए तो तकलीफ नहीं होती, मुनिराज अपने उपयोग को बाहर से समेट कर अंदर में ले जाते हैं, मैं उसकी तरफ क्यों देखूँ, जिसकी तरफ देखने से मुझे पीड़ा, तकलीफ होती है। क्यों विचार करूँ, मैं क्या देखूँ शरीर को, इतनी तकलीफ के बाद भी यह काम कर रहा है, जरूर कोई बात होगी। व्यक्ति 10, 12, 14 घंटे काम कर रहा है, लगा हुआ है, दिन-रात एक करने को तैयार है, मतलब इसको मोटा पैसा मिल रहा होगा। भाईसाहब आपको पता नहीं है, इसे क्या-क्या मिल रहा है, आपके चित्त में इस तरह की बात आने लग जाती है। कोई व्यक्ति मानव बम बन करके मरने को तैयार हो गया। ऑपरेशन करवाकर अपनी बॉडी में बम फिट करवाता है और प्लेन में बैठकर उड़ता है, उसे पता है कि यह प्लेन जाकर बिल्डिंग से टकराएगा और ब्लास्ट हो जाएगा, फिर भी आतंकवादी लोग ऐसा करने को तैयार हो जाते हैं।

जब कोई अपने परिवार के लिए करने को तैयार हो जाता है कि पीछे से पैसे पहुँचेंगे, जबकि उसकी कोई गारंटी नहीं है, आत्महत्या कर लेते हैं। जीभ पर पोटेशियम साइनाइड रखा और सब खत्म। जिहाद के

नाम पर मोटिवेट करते हैं, जन्नत नसीब हो जाएगी, खुदा खुश हो जाएगा। अल्लाह के पास में पहुँच जाएगा, दुनिया भर में कई लोग हँसते-हँसते फाँसी पर, सूली पर चढ़ जाते हैं, इन मुनिराजों को ऐसा क्या मिल गया है, उनके पास में कुछ भी तो नहीं है। उन्हें प्रतिष्ठा नहीं चाहिए। बीवी-बच्चों की परवाह नहीं है, उन्हें तो छोड़ के आए हैं, उनके जीवन में कोई लाग-लपेट नहीं है फिर अब किसके लिए कर रहे हैं, उन्हें कोई खजाना मिल गया है, जिसमें वह इतने मशगूल हो गए हैं कि उनके बाहर का कुछ ठिकाना ही नहीं है।

बाहर से आने वाले आँधी-तूफान से उपयोग हट गया और अंदर में चला गया। कर्मोदय से आने वाले आँधी-तूफानों की परवाह ज्ञानी नहीं करता, उन्होंने तिरने की कला सीख ली है, यह छोटी-छोटी कला हमें सीखनी हैं, किसी ताले को जबरदस्ती खोल रहा था और तभी कोई अनुभवी व्यक्ति आया और बोला – 'बेटा क्या कर रहे हो? ताकत का काम नहीं है, तकनीक का काम है, ताकत लगाएगा तो चाबी मुड़ जाएगी और अंदर से वह खराब हो जाएगा, फिर ताला कभी नहीं खुलेगा। चाबी लगा और हल्के से आगे की तरफ खींच कर घुमा और देख ताला खुल गया। इतना आसानी से खुल गया, हाँ इतना आसान ही तो था।'

यह छोटी-सी कला यहाँ सीख रहे हैं। परिस्थितियों, प्रतिकूलताओं को मत देखो, सीताजी यदि परिस्थितियों को देखती रहतीं तो उनके मुख से ऐसे वचन नहीं निकलते कि 'मुझे छोड़ दिया तो कोई बात नहीं; लेकिन धर्म को मत छोड़ देना।'

व्यक्ति के ऊपर जब प्रतिकूलता आती है, तब सबसे पहले धर्म को बंद करने की बात करता है, भोजन, टी.वी., न्यूज़ पेपर, मिलना-जुलना बराबर चल रहा है, सुनना-सुनाना, बात करना सब बराबर चल रहा है, तो क्या कर दिया, प्रवचन बंद कर दो, धर्मध्यान बंद कर लो,

पढ़ना-लिखना बंद कर दो। पैसों की यदि थोड़ी बहुत कमी आती है तो दान में कमी कर देता है, भाई इस समय बाजार मंदा चल रहा है, नुकसान हो रहा है, परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं, इस समय तो दान नहीं कर पाऊँगा। आपसे पूछता हूँ कि आपके घर में जो दूध 4 लीटर आता था अब तो 2 लीटर कर दिया होगा, अच्छा नहीं किया! जो दो-तीन न्यूजपेपर आते थे वह बंद कर दिए होंगे?4-6 नौकर थे, उनमें से 2 की छुट्टी कर दी होगी, उनके बिना तो काम नहीं चलता है, आपके रहन-सहन, ठाठ-बाट में तो कुछ भी कमी नहीं आई होगी। नहीं, उसमें तो कुछ कमी नहीं आई, उसकी बात मत करो, वह हमारा मुद्दा है और दान देने का मुद्दा हमारा नहीं है, वह तो दान लेने वाले का मुद्दा है, लेने वाले को देने वाले कई मिल जाएँगे, तुम सोचो कि तुम्हारी जेब से निकल पाया कि नहीं, दान में कटौती कर देता है, समय थोड़ा कम पड़ने लगता है, तो स्वाध्याय-प्रवचन में कटौती करता है, चार घंटे मंदिर में बैठता था तो 2 घंटे बैठने लग गया। चारों तरफ से धार्मिक कार्यों में कटाई, इस धर्म आराधना के क्षेत्र में करनी है। अंत में सीताजी जैसे वाक्य, उनके जैसी दृढ़ता, उनके जैसा प्रतिपादन होना चाहिए। सेनापति कृतांतवक्र से कहा कि जाकर रामचंद्रजी से कह देना कि लोकभय से मुझे तो छोड़ दिया; लेकिन धर्म नहीं छोड़ना। सीताजी विचारती हैं -

जे करम पूरव किए खोटे सहे क्यों नहीं जियरा।

सीताजी ने कहा - रामचंद्रजी का कोई कसूर नहीं था, उन्हें पश्चाताप करने की जरूरत नहीं है, मेरे पाप कर्म का उदय हो तो रख ही नहीं पाएँगे, वह चाहे कितना ही क्यों ना चाहें। अंजना की हालत भी कम खराब नहीं थी। लांछन लगाकर घर से निकाल दिया गया, गर्भवती अवस्था में हनुमान जैसे तद्भव मोक्षगामी जीव जिसके गर्भ में हो उनको धक्के मार कर घर से निकाल दिया हो, इतना पुण्यशाली जीव गर्भ में हो तब भी निकाल दिया।

पाप उदय में न माँ सगी होती है, न पिता सगे होते हैं न पत्नी न पति सगे होते हैं और जब पुण्य का उदय आता है तब सहयोग करने के लिए आसमान से आ जाते हैं, सब उदय का खेल है।

तो तुमरे जिए कौन दुख है मृत्यु महोत्सव भारी।

जीवंधर चरित्र में कथा उद्धृत है, उनका जन्म श्मशान में होगा। 9 महीने तक रानी विजया के गर्भ में जीवंधर स्वामी रहे। कर्म उदय का कैसा पासा पलटा कि राज्य छिन गया, राजा सत्यधर राज्य का सगर ने ले लिया, आक्रमण हो गया कुछ व्यवस्था नहीं है, रानी विजया क्या करें, राजा ने लकड़ी का एक विमान बनाकर उसमें बैठा कर भेज दिया, वह विमान बीच में टूट गया और जाकर के श्मशान में गिर गया - ऐसा पाप कर्म का उदय कि वहाँ अचानक उस बालक का जन्म हो गया, रानी विजया की आप कल्पना कर सकते हो कि क्या स्थिति होगी, वह श्मशान में और जन्म के समय कोई सहयोगी नहीं है। खून से लथपथ बच्चा दिखाई दे रहा है, क्या करें अपने कपड़ों से खून पोछ दिया, पीने को पानी नहीं है, बोलने को लोग नहीं, चारों तरफ भयंकर जंगल और जंगली जानवरों के बीच में भयंकर रात; महारानियों की ऐसी दशा है। ऐसी स्थिति में रानी विजया, सीता आदि विचलित नहीं हुईं, हिम्मत से काम लिया। अंजना विचलित नहीं हुई हनुमान को जन्म दिया। कुछ तो बल है आखिर ज्ञानी लोग क्या खाते-पीते हैं, क्या सोचते रहते हैं - ऐसा उनके पास क्या है।

अरे! अंदर में आत्मा को देखते हैं और शरीर की अवस्था को कर्म आधीन जानकर उससे भेद-विज्ञान करते हैं। शरीर की अवस्था कर्म के आधीन है; लेकिन अपना प्रयोग अपने पुरुषार्थ के आधीन है। मुझे पुरुषार्थ नहीं खोना है, हिम्मत से काम लेना है, अंदर में दृढ़ता है, जिनके थोड़ी भी विचलित होने की संभावना है, उसे यह प्रसंग सुना रहे हैं।

एक बच्चे के 98% अंक आए और रो रहा था कि 2% कहाँ चले गए और जिसके 60% अंक आए वह मस्त है। क्या देख रहे हो, क्यों दुखी हो रहे हो, दुखी होना और आनंदित होना किसी और के हाथ में नहीं है, स्वयं के हाथ में है, यह स्वयं पर निर्भर करता है। पुरुषार्थहीन मत बनो, यह बात कह रहे हैं, उदय आता है और चला जाता है। उदय को अपना काम करने दो और स्वयं अपना काम करो, जब उदय अपना काम पूर्णत: ईमानदारी से कर रहा है, तब हम अपना काम ईमानदारी से क्यों न करें।

कर्म के उदय ने फल देते समय पूर्णत: ईमानदारी निभाई। अब भैया तुम क्यों बेईमान बन रहे हो।

क्या तूने महा सुकुमार अत्यंत कोमल शरीर वाले सुकुमाल का जीवन चरित्र नहीं सुना। जहाँ जमीन पर कदम रखते ही खून से पैर छप जाते हैं, उन्होंने अपने जीवन में कभी जमीन पर पैर नहीं रखा था। सूर्य की किरण उनके शरीर पर कभी नहीं पड़ी थी, कठोरता शरीर पर कभी नहीं पड़ी थी, कठोरता बर्दाश्त नहीं होती थी, सरसों के दाने भी जिन्हें चुभते थे, फूलों की सैया पर भी जिन्हें कष्ट की अनुभूति हुआ करती थी, जिन्होंने अपने बचपन से लेकर युवावस्था तक रत्न के प्रकाश में जीवन बिताया था, आज जाति स्मरण से पूर्व की बातें याद आ गईं, वैराग्य का भाव आ गया और खिड़की से कपड़ा बाँधकर के नीचे उतरकर चले गए और ध्यान में लीन हो गए और श्यालनी तीन दिन तक बच्चों के साथ में खाती रही, जबकि वही पूर्व भव में भाभी थी, जिसे लात मारी थी, यह वही है जिसने मुझे लात मारी थी और बदला लेने के लिए आ गई। अपना-अपना उदय आता है, परन्तु किंचित् मात्र भी मार्ग से च्युत न होकर जिन्होंने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त कर ली, नकुल-सहदेव ने, सुकुमाल ने मार्ग से विचलित न होकर सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की थी, युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन ने अपने ध्यान से मार्ग विचलित न होकर

निर्वाण की प्राप्ति की, कष्ट की परवाह करने वाले व्यक्ति संसार में भटकते रहते हैं। वर्तमान में कष्ट की परवाह नहीं करने वाले अनंत काल के लिए सिद्धालय में जाकर विराजमान हो जाते हैं। विचार करना कि कहीं सल्लेखना न बिगड़ जाए, भेदविज्ञान का चिंतन निरंतर चलते रहना चाहिए, आराधना की चर्चा, भेदविज्ञान की चर्चा निरंतर चलती रहना चाहिए।

सल्लेखना प्रदर्शन की चीज नहीं है, आत्मदर्शन की चीज है, कहीं ऐसा नहीं हो कि हमारी सल्लेखना हमारा प्रदर्शन बनकर रह जाए, चार लोग मिलकर के कह देंगे कि अमुक व्यक्ति की समाधि हो गई तो वह व्यक्ति धन्य हो जाएगा, चार लोगों ने समझ लिया कि उनकी सल्लेखना नहीं हुई तो क्या हुआ। किसी ने कहा कि यह नरक में चले गए तो क्या हम नरक में चले जाएँगे? नहीं ना।

जगत के जीवों की निंदा-प्रशंसा किसी काम में आने वाली नहीं है, अपने परिणाम ही अपने काम आने वाले हैं, यह सल्लेखना का अंतिम उपदेश है। मैं शाश्वत आत्मा हूँ, यह वह मंत्र है, वह कड़ी है जिसके कारण सारे प्रसंग सुनाए हैं।

ऐसे असंख्य उदाहरण शास्त्रों में हैं जहाँ उपसर्ग सहकर के अनेक साधुओं ने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की है, उन जैसी दृढ़ता चाहिए तो जैन कथा संग्रह पढ़ो – ये कहानियाँ बहुत बल प्रदान करती हैं।

क्या तेरा कर्तव्य नहीं है कि तुम उनका अनुकरण करके जीवन में अधिक से अधिक निवृत्त होकर अंतरंग परिग्रह का त्याग करके साम्यभाव से, सम्यक् प्रकार से कषायों को कृश करके रत्नत्रय की भावना रूप परिणाम से पंच नमस्कार मंत्र के स्मरणपूर्वक समाधि करना चाहिए, यह समाधि की संक्षिप्त विधि है।

समाधिमरण करके आप पाँचवें स्वर्ग में लोकतांत्रिक देव हो सकते हैं, ऊपर भी जा सकते हैं, 16 स्वर्ग तक जा सकते हैं।

यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहतैं चय नर जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै।।

आगे मुनि होकर मोक्ष चले गए, परिवार से निर्मोही हो जाओ, अंतरंग में परिग्रह का त्याग करो, साम्यभाव से कषायों को कृश करो। रत्नत्रय की प्राप्ति की भावना भाओ।

रत्नत्रय का हो पालन, हो अंत में समाधि।

यदि समाधि हो गई तो प्रयोजन सिद्ध हो गया, मनुष्य जन्म सफल, सार्थक हो गया। यह संक्षिप्त विधि पण्डित टोडरमलजी ने लिखी है – ऐसा लगता है कि समस्त विधि पण्डित टोडरमलजी ने अपने को लक्ष्य में लेकर लिखी होगी।

सल्लेखना करना एक कला है, सल्लेखना की चर्चा मात्र करने की बात नहीं है, यह प्रायोगिक चर्चा है, जिस चर्चा में अनुभूति है, भावना है, जिसे जिया जाता है, अंत में शब्द दे दिया था कि इस प्रकार समाधिमरण करना चाहिए। सल्लेखना की संक्षिप्त विधि पूरी की, फिर प्रयोगात्मक चर्चा की। सल्लेखना क्या है? कषाय भाव क्या है, काय को कृश करना क्या है? और काय और कषाय इन दोनों के कृश करने का नाम समाधिमरण है। असंख्य उदाहरण हैं कि मैं किस प्रकार से अपने कषाय भावों को जीत सकता हूँ, अपना उपयोग देह से हटा सकता हूँ।

देह छूटना कोई बड़ी बात नहीं है, कोई भी दुनिया में ऐसा नहीं है, जिसने देह सहित जन्म लिया हो और जिसका मरण न हुआ हो, देह लेकर के जन्म लिया है तो देह तो नियम से छूटेगी ही; बड़ी बात यह है कि देह छूटने से पहले देह से अपनापन छूट जाए। पूरे प्रकरण में एकमात्र यही कहा गया है।

निर्वांक्षक होकर अंतर्मुखी वृत्ति रखकर पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण रखते हुए रत्नत्रय की पूर्णता के लिए रत्नत्रय को धारण करके

बढ़ते चलो, बढ़े चलो, देह छूटे तो छूटे, हमें कोई परवाह नहीं है, कोई दिक्कत नहीं है।

हमको कछु भय ना रे।

सल्लेखना वाले व्यक्ति को कोई डर नहीं होता, हर व्यक्ति के दिलो-दिमाग पर मौत का खौफ होता है कि मैं मर नहीं जाऊँ, बीमार नहीं हो जाऊँ, पलग नहीं पकड़ लूँ। हर व्यक्ति परेशान है, सल्लेखना करने वाला बीमारी एवं अस्वस्थता के काल में भी बिस्तर पर पड़ा हुआ, अंतिम साँस गिन लेने के बाद भी अपना काल आनंद से बिताता है।

पुरुषार्थसिद्धिउपाय का श्लोक 179 देखें -

सल्लेखना भी अहिंसा है -

नीयन्तेऽत्र कषाया हिंसाया: हेतवो यतस्तनुताम्।
सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसाप्रसिद्ध्यर्थम्।।

अर्थ – सल्लेखना भी अहिंसा है क्योंकि इस संन्यासमरण में हिंसा के हेतुभूत कषाय क्षीणता को प्राप्त होती हैं, इस कारण संन्यास को भी आचार्य अहिंसा की सिद्धि के लिए करते हैं।

सल्लेखना मैं भी अहिंसा है, पीछे अणुव्रत, शिक्षाव्रत, गुणव्रत की चर्चा की फिर व्रत की सार्थकता सल्लेखना में होती है, कितने भी व्रत ले लो, यदि अंत समय में सल्लेखना न हो तो व्रत निरर्थक है। जो मुक्ति को चाहता है, अतींद्रिय आनंद को चाहता है, वह चाहता है कि उनका समाधिमरण हो।

पीछे प्रत्येक प्रकरण में आचार्यदेव ने अहिंसा को सिद्ध किया है, अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा में तो अहिंसा है ही; सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह के अंदर भी अहिंसा है। दिगव्रत, देशव्रत, अनर्थदंडत्यागव्रत में अहिंसा है। सामायिक, अतिथि-संविभाग, प्रोषधोपवास व्रत एवं भोगोपभोग परिमाण व्रत सब में अहिंसा है।

12 व्रत जीने के संदर्भ में और सल्लेखना करने के संदर्भ में की गई बात है। जीने से मरने तक की चर्चा हो गई। सल्लेखना के अंदर भी अहिंसा छुपी हुई है। अंत में कहेंगे भैया मुक्तिरूपी कन्या तुम्हारे गले में वरमाला डालने को बैठी है।

अहिंसा का प्रकरण भी अहिंसा की प्रसिद्धि के लिए कहा है, अहिंसा के हेतुभूत कषाय क्षीणता को प्राप्त होती है, सारी दुनिया में कषाय के बिना हिंसा नहीं होती और जहाँ भी हिंसा होती है, वहाँ कषाय अवश्य होती है। क्रोध, गुस्सा, नाराजगी, मनमुटाव का नाम हिंसा है। एक व्यक्ति दूसरे से क्रोधित होकर बात करता है और कहता है कि मैं अहिंसावादी हूँ, जैन हूँ, इसका नाम हिंसा है। हर परिवार से बच्चे, बूढ़े, बुजुर्ग, मित्रों, शत्रुओं के प्रति द्वेष बुद्धि को, राग बुद्धि को कषाय या हिंसा कहकर पुकारा है, और जहाँ हिंसा होती है, वहाँ सल्लेखना नहीं होती। जहाँ सल्लेखना होती है वहाँ हिंसा नहीं होती, सल्लेखना में हिंसा का अभाव है।

हिंसा का मूल कारण कषाय है, वह सल्लेखना में क्षीण हो जाती है, अत: आचार्य संन्यास को भी अहिंसा की पुष्टि के लिए कहते हैं।

हिंसा का मूल कारण कषाय नहीं अपितु कषाय ही हिंसा रूप है अर्थात् कषाय जहाँ उत्पन्न होती है, वहाँ हिंसा होती है।

प्राणी मरे या ना मरे हिंसा अयत्नाचार से।

अर्थात् अयत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति होने से हिंसा होती है; भले ही किसी जीव का घात नहीं होता हो।

स्वरूप में जहाँ सावधानी है, वह अहिंसा है। अपने स्वरूप की जहाँ विराधना है, जहाँ स्वरूप की खबर नहीं है, वहाँ हिंसा है। जहाँ आत्मा और परमात्मा को नहीं पहचान पा रहा है, वहाँ हिंसा है। लौकिक में कितना ही अहिंसक जीवन जीता हो। लौकिक में कितना ही सहजता से जीवन जीता हो, जहाँ एक जीव की हिंसा नहीं करता हो,

उससे पूछो कि भैया आत्मा की खबर है तो क्या बोला – क्या आत्मा–फातमा करते हो जब देखो तब आत्मा–आत्मा। भाई साहब ऐसा विचारक हत्यारा है।

जिसे आत्मा नहीं सुहा रहा है, वह हत्यारा है, आत्मघाती है, दुरात्मा है, आत्मघाती महापापी है। हिंसा में मूल कषाय है, हमें कषाय करते ही मात्र क्रोध दिखता है, पर घमंड में भी हिंसा है, मायाचार, लोभ, लालच में भी हिंसा है। हिंसा का मूल कारण कषाय है, मैं तो बहुत अच्छा दिखता हूँ, कोरोना मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता, यह मान कषाय हिंसा है, यह कषाय सल्लेखना में क्षीण हो जाती है। कषाय घट जाती है, तन्मयता टूट गई राग टूट गया, जब देह भी अपनी नहीं है, फिर किसके प्रति अपनापन करें। तन–धन इन पदार्थों को अनंत बार अपना बनाने की चेष्टा की; लेकिन जगत के इन पदार्थों में से कोई भी पदार्थ अपना नहीं बन पाया। इसलिए इन सबसे दृष्टि हटाओ, बाह्य पदार्थ संयोग से दृष्टि हटाओ, पीछे चर्चा की है, भोजन दिखाकर जाँच करते हैं कि कहीं आसक्ति का परिणाम तो नहीं है। बोलो क्या बनाना है, डोसे बनाएँ। इसके चित्त को टटोलते हैं, समाधिमरण करने वाले निर्यापक आचार्य अंतरंग टटोलते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि आसक्ति लेकर यह मरण करे, भोजन सामग्री के प्रति तन्मय होकर मरण को प्राप्त न हो जाए, कदाचित् यदि थोड़ी बहुत आसक्ति दिखाई दे, तो लोक में अंतिम इच्छा पूछते हैं।

फाँसी की सजा में जल्लाद अंतिम इच्छा पूछते हैं, आचार्य सल्लेखना देते समय अंतिम इच्छा पूछते हैं और जैसे ही इच्छा पकड़ ली फिर उसे तत्त्व उपदेश देना शुरू कर दिया और कहते हैं – 'अनंत बार इस भोग सामग्री का उपभोग किया है, अनंत बार भोगों को भोगा है, अनंत बार खाने–पीने की सामग्री को भोगा है, फिर भी तृप्ति नहीं हुई।'

मैं चक्री पद पाय निरंतर भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे।

अनंत बार भोगने का प्रयत्न करने के बाद भी पूरे नहीं हुए।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।
युग–युग से इच्छा सागर में प्रभु गोते खाते आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

यह समाधिमरण लेने वाले को बता रहे हैं, क्यों तूने कभी भोग सामग्री, डोसे नहीं खाए हैं, अपने जीवन में हजारों बार खाए होंगे, अब खा करके कौन–सी तृप्ति मिल जाएगी, तब तृप्ति नहीं मिली फिर दोबारा आसक्त क्यों हो रहा है, इच्छा/कषाय को तोड़ना मूल प्रयोजन है। कषाय सल्लेखना में आचार्य इसे भी अहिंसा की पुष्टि के लिए कहते हैं। इसप्रकार संन्यास में कषाय क्षीण होती है और कषाय ही हिंसा में मूल कारण है।

सल्लेखना क्या होती है, सल्लेखना का मतलब क्या है, एक उत्तर दे रहे हैं, अहिंसा की पुष्टि के लिए सल्लेखना। संन्यास का प्रकरण है। अहिंसा का पालन करो, अहिंसा की पुष्टि होनी चाहिए। इसलिए संन्यास को भी अंगीकार करने से भी अहिंसा व्रत की सिद्धि होती है, इस प्रकार अंत में सल्लेखना को अंगीकार करना चाहिए। यहाँ व्रत का प्रकरण संपन्न कर दिया गया। अब शीलों के कथन को करने वाला पुरुषार्थसिद्धिउपाय का 180वाँ श्लोक कहते हैं –

इति यो व्रतरक्षार्थं सततं पालयति सकलशीलानि।
वरयति पतिंवरेव स्वयमेव तमुत्सुका शिवपदश्रीः।।

अर्थ – जो इस प्रकार पाँच अणुव्रतों की रक्षा के लिए समस्त शीलों को निरंतर पालन करता है, उस पुरुष को मोक्षरूपी लक्ष्मी अतिशय उत्कंठित स्वयंवर की कन्या की तरह स्वयं ही स्वीकार कर लेती है, अर्थात् प्राप्त हो जाती है।

पाँच अणुव्रतों के दृढ़ता से पालन करने के लिए क्या किया जाना चाहिए, सात प्रकार के शील व्रत का पालन करना चाहिए। जो व्यक्ति 12 व्रतों का पालन करता है और अंत में सल्लेखना धारण करता है उसका स्वयंवर हो रहा है, साक्षात मुक्ति रूपी कन्या जाकर उसके गले में वरमाला डाल रही है। अरे भाई! आप धन्य हो जो आपने ऐसा काम किया कि मुक्ति रूपी कन्या ने गले में वरमाला डाल दी, इसका मतलब उससे विवाह हो गया है। यह उस व्यक्ति की बात है, जिसने ब्रह्मचर्य ले लिया है, जिसने परिग्रह का त्याग कर दिया है। उस व्यक्ति की बात चल रही है, जिसने यह सबकुछ छोड़ दिया है, जिसे साम्राज्य मिलने वाला है, जिसका राज्याभिषेक होने वाला है, मुक्ति कन्या साक्षात उसका वरण करने को आ रही है, इससे ज्यादा उत्कृष्ट महिमावंत बात और क्या हो सकती है।

जो इस प्रकार पाँच अणुव्रतों की रक्षा के लिए समस्त सल्लेखना का निरंतर पालन करता है, दिगव्रत का पालन जीवनपर्यंत के लिए दृढ़ता से करता है। अष्टमी-चतुर्दशी पर्व पर व्रत-नियमों का पालन करता है, इस बात को जीवन में उतारता है, उस पुरुष को मुक्तिरूपी कन्या अतिशय उत्कंठित होकर स्वयंवर की कन्या की तरह स्वयं ही स्वीकार करती है, अर्थात् प्राप्त होती है, मुक्ति रूपी कन्या स्वयं ही आ जाएगी, तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है, जैसे स्वयंवर में कन्या अपने पति का चयन स्वयं करती है।

सीता, द्रौपदी का स्वयंवर प्रसिद्ध है, स्वयंवर में कन्या एक और उससे विवाह करने की इच्छा रखने वाले बहुत सारे लोग। तब भी वह कन्या अपने योग्य वर का स्वयं ही चयन करती है। ऐसे ही मुक्तिरूपी कन्या उसके गले में वरमाला डालती है, जो मुक्ति पर नहीं बल्कि मुक्त पर रीझता है, जिसने दृष्टि मुक्ति की तरफ की, जो उसके चक्कर लगाता है, वह उसे पसंद नहीं करती है।

जो पाँच अणुव्रत, शीलव्रत का पालन कर रहा है, जो सल्लेखना में दृढ़ है, उस पुरुष को देखकर, उसके व्यक्तित्व को, उसकी आराधना को देखकर, उसके स्वभाव की आराधना को देखकर मुक्ति कन्या दौड़ी चली आएगी, सम्यग्दर्शन रत्नत्रय आनंद अंदर में कषायों के अभाव में प्रकट होने वाली शुद्धता सबका प्रक्षालन करती है।

निहालचंद भाई कहते थे कि मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। मुक्ति को जरूरत हो तो मेरे पास आए, स्वयंवर की कन्या की तरह स्वयं ही स्वीकार करे।

हमें मुक्ति नहीं चाहिए, मोक्ष आपके चरणों में दौड़ता हुआ आएगा मुझे मुक्ति नहीं जाना, यहाँ तो देह देवालय में स्वयं ही मुक्त स्वभावी बैठा हुआ है, सल्लेखना वाला व्यक्ति अंदर में बैठे मुक्त तत्त्व का अनुभव कर रहा है, उस आनंद का अनुभव कर रहा है। सल्लेखना वाले ने भोजन छोड़ दिया है और अंदर आत्मतत्त्व का रसास्वादन कर रहा है, बाहर में जगत के जीवों को लगता है कि यह भी छुड़ा दिया, वह भी छुड़ा दिया। सारी दुनिया को सल्लेखना वाला कुछ भी छोड़ने वाला दिखता है, लेकिन जिनवाणी और निर्यापक आचार्य कह रहे हैं कि छुड़ाया कहाँ है ग्रहण कराया है। अंत समय में आते-आते तो कपड़े छोड़ने को भी कह दिया था, अरे छुड़ाया नहीं है अनंत गुण संपदा ग्रहण कराई है, अंदर का वैभव पान कराया है, भोजन छुड़ाया है, अतींद्रिय आनंद पिलाया है, जड़ रस छुड़ाया है और चेतन का रस पिलाया है, बाहर की संपदा छुड़ाई है और अंदर की संपदा दिखाई है।

एक लगन भर हो सच्ची तुझको निश्चित दर्शन होगा।

ग्रहणपूर्वक त्याग होता है, ग्रहण नहीं हो तो त्याग नहीं होता है, बच्चों से कुछ छुड़ाना है, जैसे उसके हाथ से कोई खिलौना या कीमती चीज छुड़ानी है, तो उसे दूसरी चीज पकड़ा दो तो खिलौना या कीमती चीज को छोड़ देता है। ऐसे ही जो व्यक्ति आत्मा को पकड़ता है, वह

बाकी सबको अपने आप छोड़ देता है। जो व्यक्ति अपनी संपदा को पकड़ेगा, आनंद को भोगने लगेगा, जिसे अंदर का स्वाद आ जाएगा, उसे बाहर का रस छूट जाएगा।

रस निरस हो जाय तत्क्षण, अक्ष विषय ना सुहावे।
जब निज आत्म अनुभव आवे।।

जो धर्मात्मा श्रावक पाँच अणुव्रतों की रक्षा के निमित्त सप्तशील व्रत का पालन करता है, उसको मोक्षरूपी लक्ष्मी उत्साहित होकर स्वयंवर की कन्या की तरह स्वयं वरण करती है।

मुक्ति कन्या ने सल्लेखना वाले को चुना है, अणुव्रत-शीलव्रत के पालन करने वाले को चुना है, मुक्ति कन्या के चयन का आधार अणुव्रत का पालन है, जगत की कन्या तो, जिसे घूमना-फिरना पसंद है, जो उन कन्याओं को सारे जगत में घुमाए, ऐसे वर को चुनती है; परन्तु मुक्तिरूपी कन्या त्यागियों को और योगियों को ही पसंद करती है।

मुक्ति कन्या उसे पसंद करती है जो अपने आपको पसंद करता है। जैसे स्वयंवर में कन्या अपने योग्य पुरुष को स्वयं ही पहचान कर वरमाला डाल देती है, वैसे ही मुक्तिरूपी लक्ष्मी व्रतधारी एवं समाधि-मरण धारण करने वाले श्रावक को स्वयं ही प्राप्त होती है, अर्थात् ऐसे व्यक्ति श्रावक निश्चित ही मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं। सल्लेखना-समाधिमरण, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, यह व्रत का प्रकरण यहाँ सम्पन्न हुआ।

निष्कर्ष - इसप्रकार एक सम्यकत्व 12 व्रत की चर्चा सम्यकत्व के बिना कुछ नहीं है। सबसे पहले सम्यग्दर्शन। सभी श्रावकाचार ग्रन्थों में चर्चा भले ही व्रत की हो पर चर्चा प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से करते हैं। इस प्रकार एक सम्यग्दर्शन पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत और एक सल्लेखना - इसप्रकार श्रावक के 14 व्रतों का वर्णन किया है। 12 व्रत में सम्यग्दर्शन और सल्लेखना को जोड़कर 14 व्रत हो गए, इनका

दृढ़ता से, जिम्मेदारी से पालन करना और जहाँ चूक होने की संभावना हो वहाँ अतिचार की बात करेंगे।

सल्लेखना के अतिचार व सावधानियाँ

हमारे द्वारा धारण किए गए व्रतों में कोई चूक न रह जाए, ये सावधानी जब हम रखेंगे तभी हमारा जीवन निर्मल होगा। यदि सावधानी नहीं रखेंगे तो दुर्घटना तो घटनी ही है।

सावधानी हठी और दुर्घटना घटी।

दुर्घटना न घटे इसके लिए सावधानी तो हमें ही रखनी है। नरक, तिर्यंच आदि गतियों में चले जाना, चतुर्गति में रुलते रहना दुर्घटना है। दुर्घटना न हो, ऐसा प्रयत्न करना। सल्लेखना वह उपाय है, जिससे दुर्घटना नहीं होगी। व्रतों से यह जीव दुर्घटना से बचता है। व्रती जीवों को कभी नरक नहीं होता। वे स्वर्ग में जाते हैं।

सल्लेखना के पाँच अतिचार को कहने वाला पुरुषार्थसिद्धिउपाय का श्लोक 195 कहते हैं –

जीवितमरणाशंसे सुहृदनुरागः सुखानुबन्धश्च।
सनिदानः पंचैते भवन्ति सल्लेखनाकाले।।

अर्थ – जीवन की इच्छा, मरण की इच्छा, सुहृय अर्थात् मित्र के प्रति अनुराग, सुख का अनुबंध और निदान सहित – ये पाँच अतिचार समाधिमरण के समय होते हैं।

खूब विचार और चिंतन करो कि अंत समय में मरण न बिगड़ जाए। हमारा जीवन सुधरा रहे अर्थात् परिणाम सुधरे रहें। तबीयत का कोई लेना–देना नहीं है। उपयोग की स्थिरता का नाम स्वस्थ रहना है। परिणामों के सम्भलने का नाम स्वस्थ रहना है, परिणाम बिगड़ने का नाम तबियत खराब होना है। बेहोश हो करके गिर जाना, अस्पताल में भर्ती होने को तबियत बिगड़ना नहीं कहते।

यदि भाव नियंत्रण में हैं तब कुछ नहीं बिगड़ा। धन चला गया, मकान टूट गया, हड्डियाँ टूट गईं, कोई दिक्कत नहीं है, चिंत्ता करने की जरूरत नहीं है। अन्त समय में परिणाम, भव न बिगड़ जाए इस बात की सम्भाल करनी है।

समाधि के प्रकरण में हमने 'जीवन कैसे सुधरे' इसकी चर्चा की थी। सल्लेखना मरण कैसे हो, उसकी प्रक्रिया क्या है?

आचार्य उमास्वामी देव तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र के सातवें अध्याय के 37वें सूत्र में लिखते हैं –

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि।

अर्थ – जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान से मारणान्तिक सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं।

जीवित-मरणासंशा – जीवित की आशंसा, मरण की आशंसा। अभी और जीना चाहता है, अभी मरना नहीं चाहता है, भाई तुम्हारी सल्लेखना बिगड़ रही है। अतिचार लग गया। तुमने सोचा कैसे कि और जीवित रहूँ। थोड़ा और जी लेता, थोड़ा जीवन और मिल जाता। कभी अचानक आयु पूर्ण हो जाए और अंत समय जल्दी दिखने लगे तो सोचे कि मैं इतनी जल्दी मरना नहीं चाहता। सुनो मरण का भय नहीं होना चाहिए। मैं वह तत्त्व हूँ जो कभी नहीं मरता। उस तत्व को देखो, जो कभी नहीं मरता है। जिसका मरण नहीं होता है, जो अपनी जीवत्व शक्ति से रहता है। जो त्रिकाल एकरूप रहता है उसकी यहाँ चर्चा चल रही है। कभी नहीं मरने वाला तत्त्व इस देह देवालय में विराजमान है। यहाँ से कहाँ जाऊँगा – सब व्यवस्थाएँ व्यवस्थित हैं।

तुमसे पूछकर नहीं जाऊँगा। घूम-फिरकर 4 ही जगह हैं।

ज्यादा पुण्य हो और शुभ परिणामों में लगा हो तो कहते हैं देव गति में जायेगा, पाप प्रवृत्ति में लगा हो तो कहते हैं नरक जाएगा। दो ही विकल्प दिखते हैं। इसके अलावा 84 लाख योनियाँ दिखाई नहीं दे

रही हैं। चींटी बनेगा कि मकोड़ा बनेगा। मच्छर, तितली, भौंरा, खटमल, जूँ, हाथी घोड़ा होगा। कुत्ता होगा, भैंस होगा, भेड़-बकरी क्या होगा। शेर बनेगा कि चीता बनेगा। कितनी तरह की परिस्थितियाँ हैं। पाप करता है तो नरक में जाएगा, पुण्य करता है तो स्वर्ग में जाएगा - क्या ये दो ही गतियाँ हैं? उसमें भी यहाँ की चींटी वहाँ का मच्छर? यहाँ कौन-सी जगह पर है और अमेरिका में जाकर कौन-से गाँव का कुत्ता बनेगा।

ये व्यवस्थाएँ हमारे अनुसार नहीं होंगी। हम क्या-क्या सोचेंगे? यहाँ आने के पहले भी हम सोचकर थोड़े ही आए थे। आपके हाथ में नहीं है कि मर करके कहाँ जाना है इसलिए उसकी चर्चा मत करो। आप जिंदा रहना चाहते हैं ठीक, पर आप यह बताइए आप जिंदा रहकर करोगे क्या? आपके पास योजना क्या है? मेरी इस युवावस्था में कोई बीमारी आ जाने पर डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। मैं कहूँ कि मैं तो मरना नहीं चाहता। कोई पूछे - पण्डितजी आप मरना क्यों नहीं चाहते, आपने कुछ तो सोचा होगा। अभी आपके दरवाजे पर यमराज आकर खड़ा हो गया और बोला - चलो। नहीं! अभी नहीं चलना है, अभी बहुत काम है।

अभी बच्चों की शादियाँ करनी हैं, अभी तो उन्हें व्यवस्थित करना है। अभी बच्चा कमाने लग जाए। अभी तो उसे पढ़ाई करनी है। तो उसको कहते हैं कि चल भाई! तुझे छोड़ने से कोई मतलब नहीं है।

मरते हुए व्यक्ति को यदि दो-पाँच साल और मिलने को कहे जाएँ, जिस महामारी के दौर से निकल करके, गुजर करके आए हैं और बच गए हैं। आपकी क्या योजना है कि बचे हुए जीवन में और उलझनों में नहीं उलझेंगे। दंद-फन्द में नहीं उलझेंगे। पाँच साल की जिंदगी और दे दो। फिर वही दुकानदारी, वही काम चलते रहेंगे। फिर तुमने पाँच साल ले करके किया क्या? यदि कोई काम करना ही था तो अब तक क्यों

नहीं किया और अब क्या कर लोगे? वही व्यापार, वही कामधाम, वही परिवार, वही बच्चे, वही टी.वी. के चैनल, वही सबकुछ।

यदि आपको 5-10 साल बोनस में मिल गए तो फिर करोगे क्या? उन व्यक्तियों की बात हो रही है जो मौत के मुँह से वापस आ गए हैं। अरे तबीयत बहुत खराब हो गई थी, डॉक्टरों ने कह दिया था। अब बचकर आ गए हैं फिर उसी दंद-फंद में उलझने के लिए जिंदगी चाहिए थी! राग-रंग के लिए बचे रहना चाहते हैं। अभी तक कमाया हुआ पैसा कम पड़ रहा है, क्या फिर और जोड़ेंगे, फिर और कमाएँगे, फिर लगे रहेंगे? ऐसा विचार करके सल्लेखना बिगाड़ो मत - ये सल्लेखना का अतिचार है।

सल्लेखना करने वाले व्यक्ति के यदि जीने की इच्छा हो गई है, हमें नहीं जीना है तो क्या मरना चाहते हो? नहीं मरना भी नहीं चाहते क्योंकि दूसरा भी अतिचार मरने की इच्छा है। जीने की इच्छा नहीं, मरने की इच्छा नहीं, फिर करें क्या? जो होता है उसे ज्ञाता-दृष्टा भाव से जानते-देखते रहो। जिंदगी शेष है तो जी लेंगे। आयु कर्म अवशेष होंगे तो आराधनापूर्वक जीवन बिताएँगे। यदि जीवन पूरा हो जाएगा तो जहाँ जाएँगे वहाँ आराधना करेंगे। जीने की इच्छा नहीं थी, मरने की इच्छा नहीं थी, फिर ये तो इच्छा होगी कि मरने के बाद सही स्थान पर पहुँच जाएँ। ये तो इच्छा होगी कि मरने के पहले बच्चे आ रहे हैं। कम-से-कम उनसे तो मिल लूँ। तो ऐसा मित्रानुराग नामक भी अतिचार है। यह तो मेरे मन में रह गई, एक बार तो यह काम हो ही जाता। सुविधाओं के बारे में ये सुखानुबंध है।

आशंसा = इच्छा, सहृद = मित्र के प्रति अनुराग। यदि मित्र के प्रति अनुराग की भावना दौड़ रही है तो सल्लेखना बिगड़ रही है - ये अतिचार है। अतिचार मतलब बिगड़ जाना।

सुखानुबंध = सुख का अनुबन्ध। सुविधाएँ चाहिए, अंतिम समय

चल रहा है। सुखानुबंध के लिए फाँसी चढ़ने वाले से अंतिम इच्छा पूछते हैं। मरने वालों की इच्छा पूर्ति होनी चाहिए। मरने वाले के साथ में ऐसा नहीं हो, ये सुखानुबंध है।

हम तो सुख में ही हैं सुख बाहर में है ही नहीं। अब हमने अपने सुख को अपने अंतर में देख लिया है।

सनिदान = निदान सहित। यह पाँचवाँ अतिचार है, इसके बिना सच्ची सल्लेखना होती है।

पाँच अतिचार समाधिमरण के समय होते हैं। यदि होते हैं तो सल्लेखना बिगड़ जाती है, अतिचार हो जाता है। यह होने नहीं चाहिए। बारह व्रतों के और सम्यक्त्व, समाधिमरण के ऐसे कुल 14 व्रतों के 5-5 अतिचार कुल 70 अतिचारों की चर्चा आगम में की गई है। अतिचार अर्थात् नहीं करने योग्य कार्य, बिगाड़ न हो जाए। यदि अतिचार लग गया मतलब मामला बिगड़ गया, दोष लग गया। मैं जीना भी नहीं चाहता और मरना भी नहीं चाहता – यह सहजता का आनंद है।

1. सल्लेखना धारण करने के बाद जीने की इच्छा करना। सल्लेखना लेने का मतलब है आप सम्यक्त्व सहित हो, व्रती हो, पंचम गुणस्थानवर्ती हो, देह के प्रति एकत्व बुद्धि नहीं है, शरीर के प्रति तन्मयता नहीं है। जीने की वांछा करना और किसी प्रकार मरण न हो ऐसी इच्छा करना। मर नहीं जाऊँ, डॉक्टर बचा लेना, जीना चाहता हूँ – ऐसी इच्छा करना यह महान दोष है – यह अतिचार है।

कैसी भी परिस्थिति बन जाए अब हम जीने की नहीं सोचेंगे। किसके लिए जीना है? बच्चों के लिए जीना है, परिवार के लिए,पत्नी के लिए जीना है। काम-धाम के लिए, उधार की वसूली के लिए जीना है। मैं नहीं तो ये काम कौन निपटाएगा? पीछे से पत्नी कैसे निपटाएगी। बच्चे छोटे हैं इनका क्या होगा? यमराज थोड़े दिन की मोहलत दे दो, हमें ये सब झमेले निपटाने हैं। अनगिनती जन्मों में अनंत-अनंत माता-

पिता, पत्नी, बच्चे मिले हैं और अनंत बार छोड़ा है। तेरे रहने के बाद में कोई काम अधूरे रहेंगे नहीं, चिंता करने की जरूरत नहीं है। पीछे की परवाह कौन करता है? इसके आगे और अच्छी जगह मिलेगी।

2. सल्लेखना धारण के बाद अधिक रोग वेदना हो रही हो तो ऐसी इच्छा करना कि मेरा शीघ्र मरण हो जाए तो अच्छा। पीड़ा बहुत है, तकलीफ बहुत है, कमर बहुत दुखती है। पड़े-पड़े शरीर में बहुत घाव हो गए हैं। हालत बहुत ज्यादा खराब है। शरीर में कुछ बचा नहीं है। लंग्स प्रॉब्लम हो गई है, किडनी खराब हो गई है अब क्या करेंगे। मर जाएँ तो अच्छा है। ऐसी स्थिति में बैठे-बैठे, उठते-उठते लोग कहते हैं कि – 'हे भगवान मुझे उठा क्यों नहीं लेता।' जब अपने मित्र-साथी, सगे, अपने से छोटे लोग चले जाते हैं। 70 के आसपास की उम्र है, हमसे छोटे भाई, बच्चे, बहुएँ चली गईं। अपने 10-12 यार दोस्त थे वे भी एक-एक करके सब चले गए। अब यह सोचता है कि हे भगवान! अब क्या करूँ, मुझे उठा क्यों नहीं लेता है। मरने की सोचना भी सल्लेखना का अतिचार है उसका भी विचार मत कर।

3. पूर्व के मित्रों का स्मरण करना। अमुक मित्र बहुत अच्छे थे। बचपन के दिन याद आते हैं, वह पुराना समय याद आता है। मैं उनके साथ खेला करता था। यह मित्रानुराग नाम का तीसरा अतिचार है, सल्लेखना वाले के यह भी नहीं होना चाहिए। तीसरा और चौथा बिन्दु मिलाकर पंक्ति लिखी –

भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमिरन।

उनका स्मरण नहीं हो। याद मत करो। याद करने योग्य नहीं है। जब लंदन घूमने गए थे तब वहाँ ऐसा, यहाँ ऐसा था, कनाडा वैसा था, ऑस्ट्रेलिया के अंदर एक तरफ रेगिस्तान एक तरफ समुद्र दिखाई दे रहा था। क्या गजब जगह थी, पेरिस गए थे तो एफिल टावर के ऊपर चले गए, लंदन में कोहिनूर देख करके आए। अरे भाई! तू क्या याद कर रहा

है। क्या दम है। कोहिनूर को घिस करके भस्म बनाकर अनंत बार सेवन किया है तूने। चक्रवर्ती से अनंत गुना भोगों को अनंत बार भोगा है। वर्तमान में भोगे हुए भोगों को क्या स्मरण करना। पुरानी बातें याद करने योग्य नहीं हैं। अभी से दो समय पहले की भी बातें याद करने योग्य नहीं हैं। जिनवाणी की बातें याद करने योग्य हैं। घर-गृहस्थी, परिवार की बातें याद रखने योग्य नहीं हैं। न प्रशंसा को याद रखना, न निंदा को याद रखना। प्रशंसा को याद करके अभिमान बढ़ता है और निंदा को याद करके द्वेष बढ़ता है। दोनों ही बाधक हैं, उसने ऐसी बात कही थी, उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ। वह गालियाँ तेरे कानों में गूँजती है। तुमसे कहते हैं तुम भगवान हो, बने बनाए भगवान हो।

हूँ परमात्मा छू नक्की कर। बद्धा जीव परमातमा छे।

यह तुझे याद नहीं रहता है। और उसने तुझे गधा कहा था यह याद रहता है। मुझे गधा कहा, मेरे लिए ऐसा कहा। तुझे गधा याद आ रहा है, मर करके गधा बन जाएगा। गुरुदेव कह रहे हैं कि तू परमात्मा है। अपने परमात्मास्वरूप को देख, द्रव्यदृष्टि से प्रत्येक जीव भगवान है। तब यह कहता है यह मुझे याद नहीं रहता है। जिसे परमात्मापन याद रहता है वह परमात्मा बन जाते हैं। जिसे गधा, मूर्ख याद रहता है, भरी सभा में मूर्ख कह दिया, तू है ही मूर्ख अपनी मूर्खता को याद रखेगा, निंदा को याद रखेगा, द्वेष पालेगा, गाँठ बाँध लेगा। प्रशंसा को याद रख करके मुस्कुराता है। आपको पता है गुरुदेव ने एक बार मेरी प्रशंसा की थी, पंडितजी मेरे बारे में कह रहे थे - रिकॉर्डिंग, न्यूज़पेपर की कटिंग रखता है। शब्दों को याद करके खुश होता है, अभिमान पालता है।

यदि मनुष्य गति में अभिमान नहीं होता तो यहीं मोक्ष होता। अभिमान के लिए प्रशंसा को याद मत रखो। मुझे जगह, स्थान, लोगों के नाम याद नहीं रहते हैं। मूवी का नाम याद नहीं रहता है। उसको किसलिए दिमाग में सहेज करके रखना है? पूर्व के मित्रों को अर्थात्

पुराने मित्र मिल जाएँ फिर देखो - क्या बातें चलती हैं। बचपन के, स्कूल के, कॉलेज में पढ़ने वाले जिनके साथ में समय बिताया हो फिर कब समय निकल जाता है पता ही नहीं चलता है। तेरे को पता है एक बार मैंने ऐसा शॉट मारा था कि उनकी खिड़की टूट गई थी, झमेला हो गया था। फिर इस बात पर सब लोग आ गए थे। और पुरानी बातों को याद करता है। अतः सल्लेखना बिगड़ रही है। विकथा के अंदर समय गँवाता है।

4. पूर्व में जो सुख साता की सामग्री भोगी थी। भगवान उन दोनों को लौटा दो। गाड़ियाँ थीं, सुविधाएँ थीं, फैक्ट्रियाँ चल रही थीं। अब तो मार्केट चला गया, मंदी आ गई, काम-धाम व्यापार नहीं बचे हैं। खरीदने वाले नहीं हैं। सीजन में भी खरीददारी नहीं है। सारा समय बदल गया है। होटल, कैटरिंग, मॉल सब बंद हैं, हमें पुराने दिन लौटा दो। पूर्व में जो सुख साता की सामग्री भोगी थी उसे याद करना तथा वे भोग मुझे कब मिलेंगे ऐसा चिंतवन करना। भाषा में तो लिख रहे हैं कि मत करना। पर सच्चाई यह है कि उपयोग में ये बातें कभी नहीं आना। उसे खत्म कर दो। आज की बात को कल तक ट्रांसफर नहीं करना। मेरी बात है, मैं अर्थात् चेतन, ज्ञानस्वभावी आत्मा, ज्ञानानन्द स्वभावी त्रिकाली आत्मतत्त्व हूँ। इसके अलावा रात्रि फिर जाने के बाद और कोई भी बात याद रखने योग्य नहीं है। इसने कह दिया उसने सुना दिया, उसने पलट करके जवाब दे दिया। उसने मेरी बात नहीं सुनी, उसने मेरी मानी नहीं। उसने यह किया उसने वह किया। नए दिन की शुरुआत में ध्यान, चिंतन, सामायिक करें, रोजाना हिसाब-किताब चुकता करके सोते हैं अब कुछ भी लेना-देना नहीं। आज का हिसाब आज।

हम क्षमा माँगने के लिए क्षमा वाणी का इंतजार नहीं करेंगे। डायरी में लिख दो, फिर लेना-देना नहीं। देने वाले दे जाएँगे, चुकाने वाले चुकाते रहेंगे। रात्रि में मेरा जीवन यदि पूरा हो गया तो मैं अपना हिसाब-

किताब कर चुका हूँ। भेद-विज्ञान आत्मतत्त्व को बस याद रखना है। पुरानी बातें जो याद आती हैं उन्हें ही तो हटाना है। यह समाधिमरण की बात है। उस व्यक्ति की बात है जिसकी साँझ ढल गई है, संध्या ढल गई है, जीवन पूरा हो गया है। बच्चा अमेरिका से आया नहीं वीडियो कॉलिंग से बात करा दो। अरे क्या बात करेगा ? वहाँ नए बच्चे मिलने वाले हैं। नया परिवार, नए नौकर-चाकर मिलने वाले हैं। सीमंधर भगवान के समवशरण से कौन लौट कर आना पसंद करेगा। आज जीवन पूरा हो गया तो देवगति से अपने बच्चों से मिलने कोई नहीं आएगा। कोरोना काल में अपने जानने वाले, परिचित कितने निपट गए, कोई भी नहीं आया। आज वे चले गए आज उनकी खबर मिल गई। चले तो गए लेकिन लौट करके वापस नहीं आए न। जैसे वे नहीं आए वैसे ही हम भी नहीं आएँगे। जैसे जाने के बाद उन्हें आने की परवाह नहीं है वैसे ही हमें भी आने की परवाह नहीं होगी। कुछ भी माथा-पच्ची नहीं है।

(5) आगामी काल में अच्छे-अच्छे भोगों की इच्छा करना। चलो सड़ा-गला शरीर तो यहीं छोड़ रहे हैं, पर नया तो मिलेगा? देवगति मिल जाये, सीमंधर भगवान मिल जाएँ। मर करके जो विदेह क्षेत्र में जन्म लेने की इच्छा हो रही है वह इच्छा निदान है। समाधिमरण का अतिचार है। समाधिमरण बिगड़ रहा है। सल्लेखना बिगड़ने की तैयारी। पण्डितजी क्या विदेह क्षेत्र की अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन की भावना नहीं भाऊँ? ये निदान है। अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन की बात करता है। अकृत्रिम भगवान इस देह देवल में विराजमान हैं। उसकी भावना, दृष्टि, लक्ष्यकर। अनंत गुणों की सम्पदा मेरे अंदर में मौजूद है। मैं अपने आप में परिपूर्ण तत्त्व हूँ। मुझमें कोई कमी है नहीं। तो मैं दूसरे की बात क्यों करूँ। आचार्य कुन्दकुन्द ने भी सीमंधर देशना सुनाई है -

हम लाए हैं विदेह से तत्त्वों के ज्ञान को
जिनवाणी को रखना अरे भव्यों सम्भाल के।

तत्त्वों के सार को, सीमंधर स्वामी की देशना को, आचार्य कुंदकुंद ले करके आए हैं। अब क्या करें? जिनवाणी को रखना मेरे भव्यों सम्भाल के। जिसे अंदर में तत्त्व ज्ञायक प्रभु परमात्मा मिल गया है। अब हमें कुछ नहीं चाहिए। जिसकी चाह थी वह मिल गया है।

जिसकी तुझे तलाश है वह तेरे पास है।

दर-दर की ठोकर खाता और तलाशता रहा। भगवान तू कहाँ है।

कस्तूरी तो नाभि में है वन-वन काहे डोले रे।

एक अलग प्रकार की जाति का कस्तूरी मृग होता है जिसकी नाभि में कस्तूरी नाम का सुगंधित पदार्थ होता है। उसकी सुगंध को ले करके हिरण दौड़ता रहता है कि सुगंध कहाँ से आ रही है। पर कस्तूरी तो नाभी में होती है। ऐसे ही सुख तेरे भीतर भरा हुआ है। अकृत्रिम चैत्यालयों के कहाँ दर्शन करेगा! तुम स्वयं अकृत्रिम भगवान हो तो उसके दर्शन करो।

अंदर में आनंद रस की धार बह रही है। आगामी काल में अच्छे-अच्छे भोगों की इच्छा। भोग, वैभव, सुविधाएँ, ज्ञान, विद्वान, उपदेशदाता, तीर्थंकर, दिव्यध्वनि मिल जाएगी। हमें यह नहीं सोचना है। हमें कुछ नहीं चाहिए। मिले तो मिले, न मिले तो न मिले। हमें किसी की जरूरत नहीं है। भरपूर, संपदा युक्त तत्त्व को किसी की भी जरूरत नहीं है। ये सल्लेखना के अतिचार हैं। जब हमारे जीवन में सल्लेखना होगी तब ये अतिचार नहीं होंगे। ये पाँच प्रकार के दोष, दूषण नहीं होंगे। ये बातें विचार करके सल्लेखना को बिगाड़ेंगे नहीं। सल्लेखना सफल होगी।

इसप्रकार आत्मार्थी जीव अन्तिम समय में अपने शरीर के प्रति भी मोह को त्यागकर समाधि धारण करता है, जिससे उसका इहभव और परभव दोनों ही सुधर जाते हैं।

समाधिरूपी रथ पर सवार होकर जब या जीवराजा गमन करता है तो निश्चित ही अल्पकाल में वह मुक्तिरूपी वधू का वरण करता है।

हम सब भी इहभव-परभव सुखदायक इस समाधि का आश्रय लेकर इस जन्म को सफल करते हुए जन्म-मरण का अभाव करें। ●

डॉ. संजीवकुमार गोधा आज अखिल भारतीय जैन समाज की एक जानी-मानी शख्सियत हैं। आपका जन्म राजस्थान की गुलाबी नगरी जयपुर में 26 नवम्बर 1976 को हुआ। बचपन से ही धार्मिक संस्कारों में पले-बड़े डॉ. गोधा एक निर्भीक अंतरराष्ट्रीय जैन विद्वान रहे हैं।

आप **इतिहास** एवं **जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन** विषयों में एम.ए., **जैनदर्शन** विषय से एम.फिल (गोल्ड मैडल), यूजीसी-नेट तथा **तीन लोक** विषय पर पीएच.डी. हैं।

देश-विदेश की समाज एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा आपको समय-समय पर विविध अवार्ड, सम्मान, पुरस्कार एवं उपाधियों से अलंकृत किया जाता रहा है, जिनमें अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् द्वारा **पण्डितप्रवर टोडरमल पुरस्कार व युवा विद्वत्रत्न,** श्रवणबेलगोला (महामस्तकाभिषेक) युवा सम्मेलन में **आदर्श जैन युवा राष्ट्रीय सम्मान,** शिकागो (अमेरिका) द्वारा **अति विशिष्ट सेवा अवार्ड,** उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान लखनऊ उत्तर प्रदेश सरकार व फिरोजाबाद सहित ब्रज क्षेत्र की सकल जैन समाज द्वारा **अध्यात्मचक्रवर्ती,** श्री परमागम ट्रस्ट सोनागिर द्वारा **अध्यात्मवेत्ता,** ब्राह्मी सुंदरी कन्या विद्या निकेतन सहित दिल्ली की अनेक संस्थाओं द्वारा **उपाध्यायकल्प** आदि उपाधियों सहित **आचार्य समन्तभद्र पुरस्कार, युवा जैन रत्न सम्मान,** कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा **अर्हत्वचन** पुरस्कार, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा विशेष सम्मान आदि प्रमुख हैं।

आपके द्वारा लिखित एवं सम्पादित 17 पुस्तकें एवं 30 से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आप 1998 से वीतराग विज्ञान मासिक के सह-सम्पादक एवं पाक्षिक समाचार पत्र जैनपथप्रदर्शक के सम्पादक रहे हैं एवं महाविद्यालय में शास्त्री वर्ग की विशेष कक्षाएँ लेते रहे हैं।

आप जयपुर के ऐतिहासिक मंदिर श्री दि. जैन पंचायत तेरहपंथ बड़ा (टोडरमलजी वाला मंदिर) के महामंत्री, श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक, जैन अध्यात्म एकेडमी ऑफ़ नॉर्थ अमेरिका के डायरेक्टर, विश्वस्तर पर संचालित अर्हं व सत्पथ पाठशाला के निदेशक एवं अ. भा. जैन युवा फैडरेशन राजस्थान के प्रदेश महामंत्री रहे हैं।

आप एक लोकप्रिय प्रवचनकार के रूप में विख्यात आध्यात्मिक प्रवक्ता थे। आपकी सरल, सुबोध, ओजस्वी शैली समाज में आकर्षण का विषय बनी रही। आप पूरे विश्व में सर्वाधिक ऑनलाइन लाइव सुने जाने वाले जैन विद्वान हैं। आप 1993 से नियमित प्रवचन करते हुए अंतिम समय तक लगभग 28,000 से अधिक प्रवचन कर चुके हैं। सन् 2011 से प्रतिवर्ष लगभग 2 महीने विदेशों में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु बुलाए जाते रहे हैं। सन् 2022 तक 18 विदेश यात्राओं में अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, अफ्रीका, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, दुबई आदि अनेक देशों के लगभग 40-50 शहरों में अपने प्रभावक प्रवचनों के माध्यम से धर्मध्वजा फहरा चुके हैं। **YouTube** पर **Dr. Sanjeev Godha** नाम से चैनल पर आपके हजारों वीडियो प्रवचन उपलब्ध हैं, जिनमें जैनदर्शन के लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों का समावेश है। YouTube पर आपको जैन-अजैन 65 हजार से अधिक लोग फॉलो करते हैं, जिससे चैनल पर करोड़ों व्यूज़ हैं।